TEXT DARK WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186015

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81
A '16 G

Accession No. G H 2613

Author ... अरोरा, शिव नाथ.

Title गीत नहीं ये. 1958.

This book should be returned on or before the date last marked below.

गीत नहीं ये....

(कविता-संग्रह)

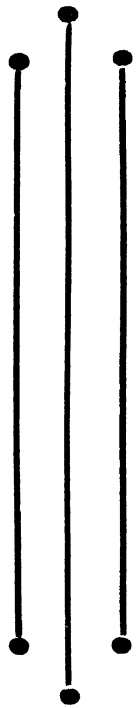

शिव नाथ अरोरा

प्रकाशक
अनुराग प्रकाशन
३, कृष्ण निवास, बुद्ध बाजार
मुरादाबाद।

प्रथम संस्करण १९५८
(सर्वाधिकार कवि के अधीन)
मूल्य तीन रुपया

आवरण-सज्जा
श्री सर्वेश्वर सरन 'सर्वे'
एम० ए०

मुद्रक
प्रतिभा प्रेस,
भट्टी स्ट्रीट, मुरादाबाद।

समर्पित

उनको

जिनके हृदय में

मेरे लिये

कुछ भी स्थान है—

प्रेम का

या घृणा का।

I heard Mr. Shivnath Arora, M.A.
a budding Hindi bard of Moradabad
on a satisfactory musical recitation
from a collection of his own He
appears to make a mark very shortly
and leave behind a worthy record
I wish him all success

All'd. Nirala

31.10.48

अनुक्रम

★

क्र सं०	कविताएँ	पृष्ठ सं०
१	सरस्वती-वन्दना	१
२	गीत नहीं, ये मेरे मन के मोत हैं	२
३	मेरे गीत न गा पाओगे	३
४	आज हुआ हूँ विस्मृत ऐसा	४
५	मुझे व्यथा ही तो भाती है	६
६	चन्द्र-चषक से बिखर पड़ी है, आज चन्द्रिका-सुरा धरा पर	७
७	आ गया हूँ आज अन्तर में तुम्हारे ...	८
८	माँझी, नाव न तट तक लाओ !	९
९	वह क्षण	१०
१०	दिन ढलता है	१४
११	छाया है उल्लास, हास इस धरती पर ...	१५
१२	जब इस उर में पीड़ा पलती	१६
१३	आगया उल्लासमय मधुमास प्रिय ! ...	१७
१४	यदि तुम न कभी आते मन में	१८
१५	पत्थर	२०
१६	शेष नहीं अनुरक्ति देवता को पाने की ...	२२
१७	कैसे कहूँ कि जाओ ?	२३
१८	जब अलस नयन मुँद जाते हैं	२४
१९	दर्द और जिन्दगी	२५
२०	टी० बी० के मरीज से	२६
२१	नव विकसित कलिका झूम उठी	२९
२२	कोई सपनों में आता है।	३०

क्रम सं०	कविताएँ	पृष्ठ सं०
२३	मैं तुम्हारे हृदय की बुझी प्रीत हूँ	३१
२४	ज़िन्दगी के पास आती ज़िन्दगी	३२
२५	मुझको जीवन में मादक सूनेपन का वरदान मिला	३३
२६	महाकवि तुलसीदास के प्रति श्रद्धांजलि	३४
२७	आओ मेरे पास रे	३५
२८	ज्ञात नहीं	३६
२९	चलो यहाँ से दूर	३७
३०	ग्राम के समाधिस्थल पर लिखा गया एक मृत्यु-गीत	३८
३१	एक याद आई जो प्राणों में बस गई	४५
३२	सॉनेट	४६
३३	मरकर भी जो अमर हो गये	४७
३४	सुमन खिले हैं मधुवन में	४९
३५	मृत्यु-सुन्दरी झाँक रही जीवन अवगुंठन-खोल	५०
३६	अठारह सौ सत्तावन के शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि	५१
३७	मैं, तुम	५४
३८	मिले हो आज मनभावन	५५
३९	तुम मुझको कहते पागल	५७
४०	एक बालक की मृत्यु पर	५९
४१	मत करो शृङ्गार रूपसि	६१
४२	जागता कवि मौन निशि में	६३
४३	महाकवि कीट्स के प्रति	६४
४४	बीते क्षण लौट न पाते	६६
४५	यह व्यथा का भार कैसा ?	६७
४६	तुम सरस सुधा सम आये	६८
४७	तुमने मुझे पुकारा !	६९

क्रम सं०	कविताएँ	पृष्ठ सं०
४८	वर्षा है यह नहीं	७१
४९	मंजिल से पहले ही रुकना पथिक, तुम्हारा काम नहीं है।	७२
५०	मुझको है विश्वास	७४
५१	मेरा परिचय	७५
५२	तुम कहो यदि	७८
५३	ओ पंछी ! दूर बसेरा तेरा	८१
५४	आज छेड़ दी सरगम किसने	८२
५५	मुक्तक।	८३
५६	शिमला।	८५
५७	क्या हुआ यदि	९२
५८	कुछ कमी थी कहीं इस भरे विश्व में	९५
५९	बुझ चुका तन, जल रहा मन	९६
६०	यों तो तुमने कभी बताया नहीं मुझे	९९
६१	कुछ जीने को, कुछ मरने को	१०१
६२	गीत मेरे हो चुके हैं शेष	१०३

सरस्वती–वन्दना

जननि ! शुभ वरदान दो ।

अर्चना के मौन स्वर को मुखर नूतन गान दो ।
जननि ! शुभ वरदान दो ।

हृदय कलुषित, प्राण विचलित, भक्ति का उन्माद जर्जर,
साधना का पंथ दुर्गम, रुक गये हैं पाँव थक कर;
भ्रांत उर की वलांति हर नित नवल लक्ष्य-विधान दो ।
जननि ! शुभ वरदान दो ।

नयन तन्द्रालस, युगों के स्वप्न से बोझिल हुए हैं,
जागरण के क्षण स्वयं ही आज ये धूमिल हुए हैं;
तिमिर-पूरित विश्व को अविराम स्वर्ण-विहान दो ।
जननि ! शुभ वरदान दो ।

कल्पना कवि को मिले, स्वरकार को मृदु कण्ठ सुखकर,
चिर नवीन उपासना से ज्योतिमय हो अवनि-अम्बर;
निज पदाम्बुज-ध्यान-मग्ना भावना को ज्ञान दो ।
जननि ! शुभ वरदान दो ।

●

गीत

गीत नहीं, ये मेरे मन के मीत हैं, इनसे मेरे मन का कुछ भी छिपा नहीं।

साथ सदा ये रहते, रोते, मुस्काते हरदम,
मेरे हास-रुदन का ये ही बन जाते संगम;
मेरी कसक, जगत की पीड़ा को ये दुलराते,
धरती के सूखे अंचल पर मधुकण बरसाते;

गान नहीं, ये मेरे तन, मन, प्राण हैं, इनसे इस जीवन का कुछ भी छिपा नहीं।

ये कोमल कलियों के रस को पीकर मदमाते,
काँटों में बिंधकर ये ही मन ही मन दुख पाते;
ये उड़ते, नभ के तारों को छू लेते पल में,
स्वप्निल पङ्ख पसार चौकड़ी भरते जल थल में;

भृङ्ग नहीं, ये नभ के मुक्त विहंग हैं, इनसे भूमि, गगन का कुछ भी छिपा नहीं।

इनमें मधुऋतु मुस्काती, पतझड़ रोता रहता,
पीड़ाओं के मरुथल में सुख-रस खोता रहता;
इन्हें सभी से प्यार, घृणा सब को ही है इनसे,
ये सहलाते उन्हें सदा, ठोकर खाते जिनसे;

शूल नहीं, ये उर-उपवन के फूल हैं, इनसे इस मधुवन का कुछ भी छिपा नहीं।

इनका जन्म हुआ पीड़ा में, घोर अभावों में,
इसीलिए निज दुःख देखते सबके घावों में;
चातक-सम ये भूल न पाते निज विश्वासों को,
स्वाँति-बूंद बन अश्रु पालते इनकी साँसों को;

घाव नहीं, ये आकुल मन के भाव हैं, इनसे इस क्रन्दन का कुछ भी छिपा नहीं।

गीत नहीं, ये मेरे मन के मीत हैं, इनसे मेरे मन का कुछ भी छिपा नहीं।

●

गीत

मेरे गीत न गा पाओगे।
मेरी मन-वीणा के स्वर में अपना स्वर न मिला पाओगे।
मेरे गीत न गा पाओगे।

इन गीतों में व्यथा छिपी है, अंगारों पर राख ढकी है,
हृदय जल रहा किन्तु न मेरी आह निकल पाती, अटकी है;
तुम न सुशीतल, सजल मेघ बन मेरे मन पर छा पाओगे।
मेरे गीत न गा पाओगे।

रहा उपेक्षित प्राणहीन सम, मुझको जग ने सदा भुलाया,
मृत्यु बुलाने आई लेकिन कभी न तुमने पास बुलाया;
जब है ठुकरा दिया जगत ने, तुम न मुझे अपना पाओगे।
मेरे गीत न गा पाओगे।

आशाएँ बन गईं निराशा, जीवन का विश्वास खो गया,
तुम न मिले तो इस जीवन का वह मधुमय मधुमास खो गया;
शुष्क हृदय पर तुम न अश्रु की दो बूँदें बरसा पाओगे।
मेरे गीत न गा पाओगे।

स्वप्निल निद्रा में सोये हैं नभ के चाँद सितारे सारे,
सो न सकीं पर मन की स्मृतियाँ, जाकर आते स्वप्न तुम्हारे;
तुम न स्वप्न की रेखाओं को मन से कभी मिटा पाओगे।
मेरे गीत न गा पाओगे।

याद तुम्हें आएगी मेरी जब मैं दूर चला जाऊँगा,
पास बुलाओगे तुम अपने, पर न कभी मैं आ पाऊँगा;
तब न जगत के सूनेपन से अपना मन बहला पाओगे।
मेरे गीत न गा पाओगे।

●

गीत

आज हुआ हूँ विस्मृत ऐसा, मुझको अपना ज्ञान नहीं है।

मेरे जीवन-पथ में कितने ही दोराहे आ जाते हैं,
चल पड़ता हूँ उधर, जिधर ही अनायास पग उठ जाते हैं;
लक्ष्यहीन, उद्‌भ्रांत पथिक सम किसी अदृश इंगित को पाकर
बढ़ा जा रहा हूँ, पर मुझको मंज़िल की पहचान नहीं है।
आज हुआ हूँ विस्मृत ऐसा, मुझको अपना ज्ञान नहीं है ॥१॥

जाने किसने मुझे पुकारा था किस युग में किस कोने से,
जिसके स्वर ने बचा लिया मुझको अपनी ही सुधि खोने से,
फूंक दिया है प्राण-बांसुरी में ऐसा मृदुराग कि जिसको
गाता जाता हूँ, पर मुझको निज स्वर की पहचान नहीं है।
आज हुआ हूँ विस्मृत ऐसा, मुझको अपना ज्ञान नहीं है ॥२॥

भाव अचेतन थे युग युग से, तुमने फिर से दे संजीवन,
नवल चेतना-सरि-परिप्लावित किया काव्य-सुमनों का जीवन;
नवल छन्द में बाँध मुझे नव लय-गति दी ऐसी तुमने प्रिय,
गीत लिखा करता पर, मुझको शब्दों की पहचान नहीं है।
आज हुआ हूँ विस्मृत ऐसा, मुझको अपना ज्ञान नहीं है ॥३॥

सदा मिले मझधार बीच तुम, जब जब मैंने साहस छोड़ा,
सुधि-पथ पर तो आये ही तुम जब जब आशा ने दम तोड़ा;
अवलम्बन पा एक तुम्हारा, तिनकों का सब मोह छोड़कर
बहा जा रहा हूँ, पर मुझको लहरों की पहचान नहीं है।
आज हुआ हूँ विस्मृत ऐसा, मुझको अपना ज्ञान नहीं है ॥४॥

मुझको मेरी अतुल शक्ति का परिचय दिया तुम्हीं ने आकर
मेरी मिट्टी के कण-कण को स्पन्दित किया मुझे अपनाकर,
पङ्ख दिये ऐसे जिनसे मैं, बाँध गगन को भी सीना में,
उड़ा जा रहा हूँ, पर मुझको धरती की पहचान नहीं है।
आज हुआ हूँ विस्मृत ऐसा, मुझको अपना ज्ञान नहीं है ॥५॥

●

गीत

मुझे व्यथा ही तो भाती है।
जग को सुख-निधि खो जाने पर यही हृदय में रह पाती है।
मुझे व्यथा ही तो भाती है।

चलते चलते युग बीते, पर राह न हो पाई पूरी,
पहुँच गया था पास तुम्हारे, बनी रही फिर भी दूरी,
मेरे जीवन की यह नौका कभी न तट तक जा पाती है,
जितना पास पहुँचता हूँ मैं, मंजिल दूर चली जाती है।
मुझे व्यथा ही तो भाती है ॥१॥

तारों को गिनते गिनते सपने भी हार गये थककर,
किन्तु तुम्हारा अदृश रूप चिर तृप्ति न दे पाया रुककर,
सिसक सिसक कर विकल वेदना कथा न अपनी कह पाती है,
जितनी होती मुखर, साधना उतनी बहरी हो जाती है।
मुझे व्यथा ही तो भाती है ॥२॥

कभी कल्पना-चषक तुम्हारी रूप-सुरा से भर जाता,
किन्तु सत्य-साक़ी उसको छलका कर रीता कर जाता,
अधरों तक आते ही युग की अमिट प्यास अकुला जाती है,
चषक सदा रीता ही रहता, हाथ निराशा ही आती है।
मुझे व्यथा ही तो भाती है ॥३॥

आकर्षण-इंगित से अपने पास मुझे क्यों बुला रहे?
सत्य-धरा से उठा मुझे क्यों स्वप्न-जगत में भुला रहे?
लाख मचलती ऊर्मि जलधि में, पर कब शशि को छू पाती है?
श्रांत उमंगें उठने से पहले ही लौट चली जाती हैं।
मुझे व्यथा ही तो भाती है ॥४॥

●

गीत

चन्द्र-चषक से बिखर पड़ी है, आज चन्द्रिका-सुरा धरा पर।

छलक पड़ा है आज किसी के
प्रीति भरे मन का प्याला भी,
बिखर पड़ी है किसी हृदय की
यों मादक प्रेयसि-हाला भी,

तभी रो रहा है कोई नीहार-कणों के अश्रु बहा कर।

निशा-सुन्दरी मधुबाला-सी
ले आई निद्रा - मधु - प्याला,
हुआ अचेतन मानव पीकर
विधि-मधुशाला की यह हाला,

किन्तु मनाता मैं प्रिय को निज मौन व्यथा के गीत सुना कर।

तारों के दीपक जलते हैं
मना रहा कोई दीवाली,
बुझा जा रहा पर इस मन का
दीपक तव सुस्नेह से खाली,

भग्न हृदय ले चला आज अंतिम साँसों की चिता सजाकर।

दूर हृदय से रहकर तुमने
इन नयनों की नींद चुराली,
लुटा चुके जब जग को सब सुख
मुझे अमिट पीड़ा दे डाली,

मिलने का आधार स्वप्न थे, छोने वे भी नींद चुराकर।

●

गीत

आगया हूँ आज अन्तर में तुम्हारे, मैं विरह-संगीत बन कर।

मैं भटकता ही रहा जग के तिमिर में जिन्दगी भर,
किन्तु जलता ही रहा अविरत तुम्हारा स्नेह पीकर;
ताकते अपलक नयन से थे मुझे तुम, इस लिये मैं
आगया हूँ आज मन्दिर तक तुम्हारे, अर्चना का दीप बन कर।

हो गया विस्मृत तुम्हारा हृदय मेरी कल्पना में,
थक गई हर साँस, मेरे स्वप्न की अभ्यर्थना में;
धैर्य देने विकल अंतर को तुम्हारे, स्वयं को खो,
आगया हूँ याद तुमको इस घड़ी में भ्रांत, सुखद अतीत बनकर।

रूठती सी रागिनी के स्वर न तुमको मिल रहे थे,
ऊबती इस जिन्दगी के पाव फिर फिर छिल रहे थे;
प्राण विचलित हो चले मेरे, तुम्हारी साधना से,
अतः होठों तक तुम्हारे आगया हूँ मैं मचलता गीत बनकर।

क्या पता, मैं आ सकूँगा या नहीं कल इस डगर में,
क्या पता, तुम भी रहोगे या नहीं कल इस नगर में;
क्या पता, पहचान पाओ कल न मेरे रूप को तुम,
इसलिये ही आगया हूँ आज तुम तक, मैं हृदय का मीत बनकर।
आगया हूँ आज अंतर में तुम्हारे, मैं विरह-संगीत बनकर।

●

गीत

माँझी, नाव न तट तक लाओ।

उमड़ रहीं घनघोर घटाएँ,
डूब चुकी हैं सब आशाएँ;
व्यर्थ सांत्वना के शब्दों से, मन को मत बहलाओ।
माँझी, नाव न तट तक लाओ।

तुमको तट पर क्या आकर्षण ?
घिरा आ रहा तिमिर-आवरण;
बोझिल नयनों में मत झूठे, सुन्दर स्वप्न सजाओ।
माँझी, नाव न तट तक लाओ।

तुमने जीवन में क्या देखा ?
खिंची न चिर-विषाद की रेखा;
हो अबोध, जग को क्या जानो, मन न व्यर्थ ललचाओ।
माँझी, नाव न तट तक लाओ।

अनुभव तुम्हें सिखा देंगे सब,
डूब चुकोगे तुम जल में जब;
संघर्षों को इस वेला में, मत इतने अलसाओ।
माँझी, नाव न तट तक लाओ।

भँवरों से डरना कायरता,
मिल पाई कब किसे अमरता ?
अतः न हो भयभीत, प्रलय-संगीत पुनः दुहराओ।
माँझी, नाव न तट तक लाओ।

●

वह क्षण

कौन सा
वह एक क्षण
—जीवित, समय का व्रण—
सिसकता जो
विरह की पीर-सा ?
किसने बताया है इसे
कि न यह सदा रह पाएगा,
मिट जाएगा,
रह जाएगी स्मृति शेष केवल,
बालुका पर ज्यों
स्वयं मिट कर
सलिल की बूँद
अपना चिन्ह जाती छोड़
शाश्वत प्रेम-सा
जो यदपि
मांसल दृग-युगल की
दृष्टि से है दूर
पर रहता
हृदय की धड़कनों में लय सदा
अव्यय, चिरन्तन सत्य-सा ?

यह वही क्षण
जो
मिलन-मधु-यामिनी की
मधुरता पीकर
बना मदमत्त-सा
है लौट जाता
फिर न आने के लिए।

यह वही क्षण
जो सदा आता
मिलन की बाँह में बँधकर,
सपन की छाँह से बिंध कर,
समय की राह पर चल कर;
मुखर सौरभ सदृश
संगीत इसका
स्पर्श कर जाता
हृदय को
जो स्वयं बन्दी प्रवासी है
किसी के हृदय में।

यह वही क्षण
जो हृदय की
विकलता-सी
मचलती रति बन
मृदुल, कोमल
करों की

डाल गलबाँही
बढ़ा देता तृषा
अतृप्त अधरों की,
हृदय को, प्राण को;
फिर उड़ चला जाता
अनादि, अनन्त पथ पर
हो अदृश, अज्ञेय,
आशाभुक्त, अपराजेय
साधों की भरी गगरी
निठुर, जड़
पद्भ से ठुकरा,
कुंवारी साँस से छलका।

यह वही क्षण
जो मिलाता
कली को अलि से,
उषा को सूर्य से,
निशि को
सुधामय इन्दु से;
लेकिन न स्थिर रहता,
चला जाता सदा हो
अर्द्ध-निद्रित,
अर्द्ध-चेतन पलक-अधरों पर
अमिट चुम्बन सजाकर
काम-पीड़ित स्वप्न-सा।

एक ऐसा क्षण
सदा आता
सभी की
जिन्दगी में
ज्वार जीवन का लिए,
मधुमास
यौवन का पिये
छिपकर
किसी की याद-सा;
तब हम
किसी सीमा रहित
साकार को
निज बाहुओं की
अचल सीमा में
बना बन्दी,
अधर पर
अधर रखकर
नयन निज
—निज कल्पना के नयन भी—
हैं मूँद लेना चाहते ।

●

गीत

दिन ढलता है।
जीवन की संध्या आई है, प्राणों का पाहुन चलता है,
दिन ढलता है।

रुक न सकेंगे श्वास-विहग ये, जायेंगे उस पार,
चाँद सितारों की दुनिया का पायेंगे आधार;
सुधियों का उजड़ा उपवन अब इस पागल मन में जलता है।
दिन ढलता है।

बीते क्षण कब लौट सके हैं, व्यर्थ हुई वह आह,
समय-सारथी ने कब की रथ-मर्दित की परवाह?
तममय पथ पर आहत होकर एकाकी चलना खलता है।
दिन ढलता है।

व्यर्थ गँवाए सुख के वे पल, मन में भर अनुराग,
सपनों की छाया में पाली प्रिय छवि की वह आग;
ज्ञात न था तब, प्रेम निठुर बन भोले हृदयों को छलता है।
दिन ढलता है।

●

गीत

छाया है उल्लास, हास इस धरती पर
पर जीवन में अब तक मैं मुस्का न सका।

हुए रागमय सब ही, किन्तु विराग न मेरा छूट सका,
सबसे दूर हुआ, पर कब पीड़ा से नाता टूट सका ?
आज नया संगीत छिड़ा है महफ़िल में,
पर मैं अपना स्वर हूँ अभी मिला न सका।

कहते सब अपनी अपनी, कब कौन दूसरे की सुनता ?
यों तो मरु में भी कलिका का सौरभ नित्य शीश धुनता;
गीत सुने मैंने सब के ही जीवन भर,
पर मैं अपना दुखड़ा कभी सुना न सका।

सबकी पीड़ा खोने का ही रहा लक्ष्य इस जीवन में
बसने का अवकाश मिला कब मुझको प्रेयसि के मन में;
सब के छाले सहलाते खोया यौवन,
लेकिन अपने उर के घाव दिखा न सका।

चहल पहल है, धूम मची है, दुनिया में मस्ती छाई,
पर इस एकाकी जीवन में मिलन-घटा कब घिर पाई ?
जुड़ा हुआ है मेला इस जगती-तल में,
पर मैं अपना साथी अब तक पा न सका।

जीवन का पथ कठिन, मृत्यु का तम आगे घिरता आता,
जितना मैं आगे बढ़ता, साहस पीछे फिरता जाता;
सब ही पहुँच चुके हैं अपनी मंजिल तक,
किन्तु अन्त मेरे पथ का है आ न सका।

●

गीत

जब इस उर में पीड़ा पलती, गीतों के आँसू बहते हैं।

हो जाते बोझिल प्राण जभी, जीवन में छाता सूनापन,
हो जाती मौन मुखर वाणी, नयनों में भर आता सावन;
आकार प्राप्त कर भाव तभी, निज कथा स्वयं ही कहते हैं।
जब इस उर में पीड़ा पलती.....॥१॥

सुख दुख आते जाते रहते, कब कौन किसी को सुन पाता,
यद्यपि बीती बातों की स्मृति का कंटक चुभता ही जाता;
मिट चुका हास जो अधरों से, हम उसे खोजते रहते हैं।
जब इस उर में पीड़ा पलती.....॥२॥

आते हैं ऐसे क्षण भी, जब रोने में हमको सुख मिलता,
पतझड़ बसंत बन जाता है, दुख-शूल सुमन बनकर खिलता;
निष्प्राण, प्राण के पङ्गु साँस का भार सदा ही सहते हैं।
जब इस उर में पीड़ा पलती.....॥३॥

●

गीत

आ गया उल्लासमय मधुमास प्रिय, अनजान फिर भी बन रहे तुम !

अंकुरित हैं हो रहे मन में सरस संगीतमय, सौरभ भरे स्वर,
आज नव विकसित हुये प्रति अंग के पल्लव निराली कांति से भर;
हो रहा है प्रीति का आभास प्रिय,
अनजान फिर भी बन रहे तुम !

नव वसन धारण किये हर कण प्रकृति का कर रहा अविरत प्रतीक्षा,
आज इस मधु-स्नात क्षण में ले रहे क्यों आँसुओं की तुम परीक्षा ?
बढ़ गई है लोचनों की प्यास प्रिय,
अनजान फिर भी बन रहे तुम !

रूप-किशलय के करों में ले सुकोमल कामना के इन्द्र-धनुषी रङ्ग अपने
स्पर्श करते जा रहे तुम सुप्त सुधियों की पलक में बन्द सपने;
हो रही उन्मादिनी हर साँस प्रिय,
अनजान फिर भी बन रहे तुम !

साँस तुम भी ले रहे हो इसलिए ही लग रहा सुरभित समीरण,
यदपि होते जा रहे इससे हरे फिर से, हृदय के सूखते व्रण;
अलि कली से कर रहे परिहास प्रिय,
अनजान फिर भी बन रहे तुम !

आ गया उल्लासमय मधुमास प्रिय, अनजान फिर भी बन रहे तुम !

●

गीत

यदि तुम न कभी आते मन में,
कितना सुख, कितनी शांति मुझे मिलती होती इस जीवन में !
यदि तुम न कभी आते मन में।

तब रवि न जलाता मुझे कभी,
तब उषा न मुझ पर हँस पाती,
तब मुझे न जहर पिलाता शशि,
तब निशा न मुझको डस पाती;
उस समय न मैं व्याकुल होता, उस समय न मैं जी भर रोता,
उस समय न तुमको याद किया करता सपनों के निर्जन में।
यदि तुम न कभी आते मन में ॥१॥

मेरी अपनी ही दुनिया थी,
मेरा अपना मीठा सपना,
सब कुछ मैं ही था, फिर कैसे
मैं कहता खुद को ही अपना;
अपने से विरह न हो सकता, चिर मिलन बना था यह जीवन,
"मैं", "तुम" का भेद न व्याप्त हुआ होता प्राणों के कण कण में।
यदि तुम न कभी आते मन में ॥२॥

तुम आये द्वैत बना मैं ही
जो स्वयं रहा था एक सदा,
मेरा ही था अस्तित्व मिटा,
तुम ही छाये बन कर विपदा;
मैं, "तुम" होकर भी, खो न सका निज "अहम्" सरीखा स्वाभिमान,
खोजना न पड़ता मुझे स्वयं अपने को इस निर्वासन में।
यदि तुम न कभी आते मन में ॥३॥

मेरे पीछे फिरती रहती
तुम मेरी ही वह छाया हो,
पर तुम्हें न मैं छू पाता हूँ,
इस भ्रमित हृदय की माया हो;
मैं जान न पाता, खोज रहा मैं तुमको या अपने को ही
यह द्विविधा मुझे न छल पाती मेरे अपने पागलपन में।
यदि तुम न कभी आते मन में ॥४॥

●

पत्थर

मैं पत्थर-दिल वाला पत्थर !

मैं भूखा हूँ, मैं नंगा हूँ, पर न किसी से भीख माँगता,
ठोकर खाता रहता नित ही, पर न किसी से सीख माँगता;
दिखा रहे हैं जो हमदर्दी, उसमें उनका स्वार्थ भरा है,
मुट्ठी भर दाने देने में दुनिया का परमार्थ भरा है;
मुझको लालच देते शोषक, मुझे देवता समझ मनाते,
मुझ पर फूल चढ़ाते, लेकिन मुझे काटकर महल बनाते;
पर जितना शोषण होता है, उतना ही मैं होता दृढ़तर।
मैं पत्थर-दिल वाला पत्थर !

मैं भी किसी जिगर का टुकड़ा हूँ मुझको अभिमान चाहिये,
स्वयं सृष्टि का एक अङ्ग हूँ, मुझको भी सम्मान चाहिए;
वेगमयी सरिता सम यौवन, मुझको भी फुसलाया करता,
किन्तु जगत के आघातों से नीरस मन अकुलाया करता;
मेरी अभिलाषाओं का है शान्त हो चुका ज्वार कभी का,
सूख चुका है जड़ मानस से मेरा मधुमय प्यार कभी का;
प्राप्त कर सका कभी न रसमय वीरुध का आलिंगन सुखकर।
मैं पत्थर-दिल वाला पत्थर !

सुख का मलय-समीरण कभी न मुझमें सिहरन पैदा करता,
नव सुमनों का सौरभ अब न बुझे प्राणों में स्पंदन भरता;
क्योंकि मुझे इन क्षणिक बहारों का आनन्द नहीं पाना है,
आत्म-तोष का मूल्य चुकाकर मुझे न पल भर मुस्काना है;
कल ये कलियाँ मुरझा जाएँगी पतझड़ के कटु झोकों में,
किन्तु मैं सदा सुख से सोऊँगा काँटों की मृदु नोकों में;
मोह नहीं मुझको प्राणों का, पर न चाहता होना जर्जर।
मैं पत्थर-दिल वाला पत्थर !

चूर चूर हो जाऊँगा पर कभी न मैं मिटने पाऊँगा,
मिट्टी में मिलकर मिट्टी से फिर पत्थर ही बन जाऊँगा;
मुझमें भी निष्प्राण प्राण हैं, जीवन रहित स्वयं जीवन हूँ,
हृदयहीन हूँ किन्तु अनेकों हृदयों की अविरल धड़कन हूँ;
श्वासहीन हूँ पर निशि-वासर मैं निःश्वास भरा करता हूँ,
धरती के भग्नाश हृदय में मैं विश्वास भरा करता हूँ;
मेरे नीरस वक्षस्थल पर झलका करते हैं श्रम-सीकर।
मैं पत्थर-दिल वाला पत्थर !

●

गीत

शेष नहीं अनुरक्ति देवता को पाने की,
कारण नहीं समझ पड़ता इस परिवर्तन का।

हार गया मैं देवालय में अर्घ्य चढ़ाकर नयनों का,
पर न कभी विगलित हो पाया मन निष्ठुर पाषाणों का,
शेष नहीं है भक्ति हृदय में झुकने की भी,
जबकि सुफल मिलने वाला है आराधन का।

गया न जाने कितनी बार द्वार तक लेकर अभिलाषा,
किन्तु न खुल पाये कपाट, थी यही प्रीति की परिभाषा,
अब न हृदय में दर्शन की आसक्ति शेष है,
जबकि समय आ गया देवता के दर्शन का।

पा न सकूँगा जिसको मैं, क्यों उसके लिये व्यर्थ रोऊँ?
जो न सकूँगा जिसको पा, क्यों उसके लिये प्राण खोऊँ?
आज हो चुकी है विरक्ति निज प्रियतम से भी,
जबकि हृदय में ज्वार उठा है नवयौवन का।

आज पुरानी राहों पर चलने का कुछ उत्साह नहीं,
आज पुरानी मंजिल तक जाने की मन में चाह नहीं,
शेष नहीं है शक्ति पगों में चलने की भी,
जबकि कि लक्ष्य आ चुका पास है इस जीवन का,

शेष नहीं अनुरक्ति देवता को पाने की,
कारण नहीं समझ पड़ता इस परिवर्तन का।

●

गीत

कैसे कहूँ कि जाओ ?

अभी घिर रहे पीड़ा के घन,
नयनों में छाया है सावन,
प्राणों का छूटा अवलंबन,
उमड़ रहे पलकों में जलकन;
विदा-निशा में आशाङ्कित मन,
ज्योति-पुंज बन छाओ ।

अभी न अश्रु मुखर हो पाए,
अभी कहाँ हम कुछ कह पाए ?
व्यथा न छिपती आज छिपाए;
कहीं बाँध यह टूट न जाए,
किसे ज्ञात कल क्या हो जाए ?
मौन मुखर कर जाओ ।

नयनों की यह अश्रु-शृंखला,
हुई आज क्यों इतनी अबला,
रोक न पाती तुम्हें, निश्चला
बनी सोचती है युग बदला;
हृदय आज जब इतना मचला,
कुछ क्षण ही रुक जाओ ।

कैसे कहूँ कि जाओ ?

●

गीत

जब अलस नयन मुंद जाते हैं, तुम रँगते मेरे स्वप्न-चित्र ।

आलोकहीन, दुख-निशा-लिप्त इस हृदय-गगन के रवि हो तुम,
जो कभी न पूर्ण हुई, मेरी जीवन-कविता के कवि हो तुम,
हो मेरी अभिलाषाओं के केवल तुम ही बंधन पवित्र ।
तुम रँगते मेरे स्वप्न-चित्र ॥१॥

तुम चित्रकार ! मेरे सपनों को नित नव रूप दिया करते,
मेरे भावों को ही अनुकृति-सा चित्रित इन्हें किया करते,
मेरी कल्पना-तूलिका से, निज रूप-रंग लेकर विचित्र ।
तुम रँगते मेरे स्वप्न-चित्र ॥२॥

जब निद्रा की सरिता उर का सारा कल्मष धो देती है,
जब अहम् भावना अंतर को निज अपनापन खो देती है,
तब निराकार, तुम छा जाते मानस-पट पर शाश्वत, सचित्र ।
तुम रँगते मेरे स्वप्न-चित्र ॥३॥

मेरी यह नीरस व्यथा रागमय बन जाती तुमको पाकर,
हो जाते रसमय नयन-उपल तुमको भ्रम में भी अपनाकर,
छा जाते हो जब दिवा-स्वप्न-से, स्मृति-नयनों में तुम सुमित्र ।
तुम रँगते मेरे स्वप्न-चित्र ॥४॥

मेरे एकांत क्षणों में स्मृति की मधुर कसक सम आ जाते,
रोदन-लोरी सुन सोये पीड़ा-शिशु को तुम मचला जाते,
यों दिखा कल्पना को सुरधनु-सा सतरंगी माया-चरित्र ।
तुम रँगते मेरे स्वप्न-चित्र ॥५॥

●

दर्द और ज़िन्दगी

दर्द से
बीमार आहें ही
पला करतीं;
ज़िन्दगी तो
जी नहीं जाती कभी
कमज़ोर साँसों से
जिन्हें हम पालते
दे धैर्य
अपनी
मिट रही
इन आस्थाओं का ।
कुछ कहें,
यह मानना होगा
सभी को—
आज के युग में
स्वयं जीना
अधिक
दुष्कर बना है
दूसरों को
ज़िन्दगी में
फिर नया विश्वास
देने से ।

●

टी० बी० के मरीज़ से

निराश प्रेम-सी
उदासी से ढकी
मुखाकृति,
टूटे हुए वायदे-सा यह भग्न शरीर,
आधी पढ़ी पुस्तक-सी
यह ज़िन्दगी—
क्या तुम्हारा भाग्य
इतना ही संचय कर पाया ?
बोलो,
बोलो भी
ओ टी० बी० के मरीज़ !
भोर होने पर
मिटते हुए
स्वप्न की तरह
क्षय होने के लिए ही
क्या तुमको
यह शरीर मिला था ?

ठण्डी पड़ गई चाय-सी
तुम्हारी यह बेस्वाद मुस्कान
किसी के हृदय में
प्रेम जैसी
कोई चीज़
कब पैदा कर सकी ?

पराङ्मुखी प्रेयसि की
धुँधली याद-सी
इन सूनी आँखों में
किसी का रूप
तुम कब बसा पाए ?
जीवन और मौत के बीच
लटकी हुई
त्रिशंकु-सी
तुम्हारी
यह जवानी
अनिश्चय की
प्रतिमा बन
इस रोग के
प्रश्न-चिन्ह को
एक टक निहार रही है ।
क्या तुम में
जीने की इच्छा नहीं ?
क्या तुम्हारी आशाएँ

पथरा चुकीं ?
क्या तुम्हारे अरमान
बुझ चुके ?
तुम नहीं बोलते,
बोल सकते भी नहीं ।

कौन जाने
कब
किस जन्म में
तुमने
ऐसा क्या किया था
कि तुमको अब
तुम्हारी तस्वीर ही
नहीं पहचान पाती,
तुम्हारी वाणी
तुम्हारे ही लिये अपरिचित है।

●

गीत

नव विकसित कलिका झूम उठी।

कल तक शैशव के आँचल में उलझी, लिपटी, खोई-सी थी,
पर आज समय की गति से यह, चिर जटिल समस्या, सुलझ गई;
थी यौवनमय, बोझिल निद्रा में स्वप्न सुनहरे देख रही,
पर आज मधुर सुख-स्वप्न बने कटु सत्य, भ्रांति वह चली गई;
कानों में पड़ने लगा मधुर, मृदु मदिर राग गुनगुन, प्रिय का,
कुछ यौवन का था भार और कुछ विकल उमंगें घूम उठीं।
नव विकसित कलिका झूम उठी ॥१॥

शैशव का यों अवसान हुआ, फिर यौवन ने अँगड़ाई ली,
आ गया नवल सौंदर्य, सकल सौरभमय आभा दमक उठी;
खिल उठी चंद्रिका सदृश सलज कौमार्य-भार से दबी हुई,
मृदु मन्द समीरण के झोंके खाती इठलाती थिरक उठी;
जीवन-पुस्तक का एक पृष्ठ पलटा विधना ने निज कर से,
चिर तृषित मधुप-दल आ पहुँचा, यौवन की मन में धूम उठी।
नव विकसित कलिका झूम उठी ॥२॥

आसक्त प्रेमियों के दल को लख जाग पड़ा रूपाभिमान,
'मैं ही हूँ सुन्दर धरती पर' वह भ्रांत धारणा उदय हुई;
कर गई उपेक्षा कितने ही उन प्रेमपूर्ण अलि-हृदयों की,
पर प्राकृत नियमों के समक्ष मदयुक्त धारणा विलय हुई;
फँस गई अंतमें प्रेमपूर्ण आलिंगन में वह, प्रिय अलि के,
यौवन-रस-पान किया अलि ने, कलिका बरबस भू चूम उठी।
नव विकसित कलिका झूम उठी ॥३॥

●

गीत

जिन्दगी के पास आती जिन्दगी, मौत का एहसान इतना ही बहुत है।

दो किनारों को मिलाती मौत ही, जो रहे बिछुड़े सदा जलधार से,
है डुबाती नाव को जल में वही, यों बचाने को उसे मझधार से;
सोख जीवन को, नवल जीवन अमर दो किनारों के मिलन को दे सके,
पहुँच सीमा तक न लौटे फिर कभी, साँस का अरमान इतना ही बहुत है।
जिन्दगी के पास आती... ... ...॥१॥

भटकते ही कामना के व्योम में प्राण का सूरज यहीं ढलने चला,
एक दीपक बुझ चला इस राह में, दूसरा उस राह में जलने चला,
पर निराशा का तिमिर कैसे बढ़े, चमकती सब ओर जब आशा-किरन,
यदि चले तो पहुँचना मुश्किल नहीं, लक्ष्य का अनुमान इतना ही बहुत है।
जिन्दगी के पास आती... ... ...॥२॥

हाथ खाली ले चला जाता मनुज, देख पाता है नहीं मुड़कर कभी,
"देख पाया कुछ नहीं संसार में", कह बिलखते भाग्य पर उसके सभी,
पर अभागा कौन कह सकता उसे, छोड़कर बंधन चला जो विश्व के,
भार कुछ भी हो नहीं इस शीश पर, सफ़र का सामान इतना ही बहुत है।
जिन्दगी के पास आती... ... ...॥३॥

उम्र की ढलती दुपहरी निठुर है, यह जला देती जवानी फूल-सी,
तृप्ति की छाया क्षणिक, पड़ती मगर फाँकनी चिर वासना की धूल-सी;
दिवस के संघर्ष से ऊबे थके, मनुज को निद्रा सुलाती गोद में,
सुखद ऊषा मुस्कुराती स्वप्न में, रात्रि का वरदान इतना ही बहुत है।
जिन्दगी के पास आती... ... ...॥४॥

●

गीत

मुझको जीवन में मादक सूनेपन का वरदान मिला।

रहे तृषाकुल सदा अधर मेरी चाहों के जीवन को,
कभी न तृप्ति-सुरा से प्यास बुझा पाए अपने मन की,
मेरी आशा के सूने ब्रज में न कभी मोहन आए,
करुण पुकारें उर-सुधि-चातक को घनश्याम न सुन पाए;
सब से ही ठुकराए जाने का अनुपम सम्मान मिला।

निठुर प्यार की मरु में मेरा हृदय-हिरन भटका करता,
पर प्रतिदान-वारि-प्राप्त्याशा का अभाव खटका करता,
इसीलिए सुधि-काँटों से बिंध सके न अब तक उर के पग,
सुप्त चेतनाओं ने अब तक खोल न पाए हैं निज दृग;
सदा अधूरा रहा अधर पर, मुझको वह मधुगान मिला।

मेरी सलज कामनाओं के सजल नयन भी ललचाए,
मौन याचना की, उर-याचक ने भी निज कर फैलाए,
पर निरीह कल्पना वियोगिनि रही साधनारत, अविचल
आ न सका जिसके सूने नयनों के प्राणों का सम्बल;
शलभ-प्रतीक्षा में तिल-तिल जलने का मृदु अरमान मिला।

साथ न दे पाए कोई, मुझको उस मंजिल तक जाना,
आत्म-समर्पण ही है जिसकी प्राप्ति, उस 'निठुर' को पाना,
मेरे पथ में जीवन की खाई न विघ्न बन पाएगी,
भँवर-लहरि प्रत्येक बनी नौका तट तक पहुँचाएगी;
अनजानी राहों में एकाकी चलने का मान मिला।

मुझको जीवन में मादक सूनेपन का वरदान मिला।

●

महाकवि तुलसीदास के प्रति श्रद्धांजलि

पाप का ज्वर-ताप हरने अमर तुलसीदास आये ।
राम की विरुदावली का मौन मुखरित कर दिया है,
बधिर कानों को सुरीली रागिनी से भर दिया है;
त्याग, ममता, प्रेम औ' कर्त्तव्य से रँगकर सु-मन राब
पाप-शोषित विश्व-वन में भक्ति-रस-मधुमास लाये ।

राजनैतिक पंक में, बन धर्म के सरसिज, खिले वह,
म्लेच्छ-मरु में भक्तजन को कल्पतरु-छाया मिले वह;
अन्ध पथ में भ्रांत पथिकों के लिए बन पथ-प्रदर्शक
तृषित चातक-सी निराशा के लिए घन-आस लाये ।

काव्य-नभ के प्रखर दिनकर पर सुधाकर सम सुधामय,
पान ज्ञानामृत कराकर हर लिया सब मृत्यु का भय;
स्नेहवाहक ज्योतिमय सुधि-दीप अन्तर का जलाकर
म्लान-मुख अज्ञान-तम-संहार हित सुप्रकाश लाये ।

दुर्व्यसन-संलग्न युग की तान सूनी हो चुकी थी,
धर्म की बजती सुरीली बाँसुरी स्वर खो चुकी थी;
वासना-कलुषित हृदय से सत्य, शिव, सुन्दर मनोहर
दूर जो स्वर हो चुके थे, फिर उन्हीं को पास लाये ।

ठान ली हठ रागिनी ने आज, जड़ता गुनगुनाती,
और जिह्वा उस अपार्थिव, अमर कवि के गीत गाती;
वरदहस्ता शारदा का चरण-रज-सुप्रसाद पाकर
भक्ति-विह्वल उर-कमल का नवल शरद-विकास लाये ।

●

गीत

आओ मेरे पास रे ।

युग युग बीते
आँसू पीते
किन्तु न आए
तुम मनभाए,
दृग अलसाए,
सन्ध्या हुई उदास रे ।
आओ मेरे पास रे ॥१॥

मन का उपवन
शुष्क, भग्न तन,
मूर्च्छित आशा,
मृत अभिलाषा,
पूर्ण निराशा,
प्राणों में चिर प्यास रे ।
आओ मेरे पास रे ॥२॥

परवश तन मन,
बेबस जीवन,
हृदय सशंकित,
प्राण विकम्पित,
जीवन वंचित,
दूर अधर से हास रे ।
आओ मेरे पास रे ॥३॥

समझाना क्या,
बहलाना क्या,
बचपन यौवन,
जरा अपावन,
सभी प्रवंचन;
क्षणभंगुर मधुमास रे ।
आओ मेरे पास रे ॥४॥

जग को त्यागो,
किन्तु न भागो;
जीवन बन्धन,
मुक्ति अकिंचन,
प्रीति चिरंतन,
आओ मेरे पास रे ॥५॥

●

ज्ञात नहीं

ज्ञात नहीं कब तुमने
मेरे अधरों पर निज अधर धरे,
किन्तु याद इतना है मुझको—
उस क्षण से ही
मेरा यह संसार बन गया
अधिक मधुर।
अब तक तो मैं तड़पा करता था
फँसकर
मकड़ी के जाले-सी
स्व-भाग्य की रेखाओं में,
मेरा निज व्यक्तित्व सुप्त था
ऐसे ही, जैसे पानी
काई की परतों में ढक जाए;
किन्तु तुम्हारे अधरों ने
वह लहर उठा दी
जिसने सारी काई कर दी दूर,
और मैं "मैं" होकर आया
जग के सम्मुख,
किन्तु
वह तुम ही थे
जो "मैं" बनकर आये थे
मेरा वेश धरे।

●

गीत

चलो यहाँ से दूर !

जहाँ दुखों की निशा न छाये,
जहाँ न आशा का रवि डूबे,
जहाँ न जीवन भार बना हो,
जहाँ न यौवन से मन ऊबे,
जहाँ न सत्याघातों से सपने हों चकनाचूर।
चलो यहाँ से दूर।

यहाँ तृषा है तृप्ति स्वयं ही,
शीतलता ही यहाँ जलन है,
मृगतृष्णा है प्राप्ति यहाँ पर,
आकर्षण छलमय बंधन है;
यहाँ अधर का हास रुदन का आमंत्रण है क्रूर।
चलो यहाँ से दूर।

तोड़ो मिट्टी के जड़ बंधन,
मुक्त करो इस तन को, मन को,
उड़ो विहग बन शून्य गगन में,
पंख पसार छुओ उडुगन को;
चलो, जहाँ भू के आकर्षण कर न सकें मजबूर।
चलो यहाँ से दूर।

●

ग्राम के समाधिस्थल पर लिखा गया एक मृत्यु-गीत

विदा दे रहा है दिन को घन्टी का टुनटुन् स्वर बजकर
और झूमता चला आ रहा पशु-समूह पगडंडी पर,
हलवाहा है लौट रहा अपने घर के पथ पर विश्रांत
अन्धकार में छोड़ जगत को और मुझे इस जग में क्लान्त।

दूर हो चलीं इन नयनों से अब दृश्यावलियाँ क्षीणाभ,
और पवन चापल्य छोड़ निज उठा रहा प्रशांति का लाभ;
केवल है अपवाद जहाँ अलि चक्र लगा गुनगुना रहा,
अलस शब्द उस पशु-समूह को सो जाने को मना रहा।

या सामने हरित-वीरुध-आच्छादित अचल बुर्ज पर से
है कर रहा शिकायत, होकर क्षुब्ध, उलूक सुधाकर से
उसकी जिसने अनजाने ही आ उसके निवास के पास,
उसकी एकाकी सत्ता में विघ्न डाल है किया उदास।

उन उजड़े वृक्षों के नीचे सुखद शांतियुत छाया में
जहाँ उग रही घास, अनेकों ढेर बनी, भू-काया में,
सोये हैं अपनी अपनी सीमित समाधि में मग्न सभी
पूर्वज इसी गाँव के चिर निद्रालु, न जो जग सकें कभी।

सुरभि-सुवासित ऊषा के मृदु मन्द पवन का शीतल स्पर्श,
तृण-निर्मित नीड़ों से विहगों का कलरव-कूजित वह हर्ष,
कुक्कुट का 'अजान'-स्वर या ग्वालों का शृंग-नाद-गुंजन,
ये सब अब न करेंगे जागृत उनका निद्रालस तन-मन ।

अब न प्रज्ज्वलित होगी अग्नि-शिखा हरने को उनका शीत,
अब न व्यस्त भार्या सन्ध्या-कार्यों में प्रकट करेगी प्रीत,
शिशु न दौड़कर तुतलाते आएँगे करने को स्वागत,
गलबाँहीं देकर पाने को पितु का चुम्बन ईर्ष्यारत ।

फसलें इनकी हँसिया के सम्मुख होती थीं नत-मस्तक,
इनके हल के फल से होती थी कठोर भू क्षत विक्षत;
खेतों से कितने उल्लास भरे वे निज घर आते थे,
कम्पित होते थे वन, अपना पशु-समूह जब लाते थे ।

अभिलाषाएँ हँसें न कहीं परिश्रम पर उनके पल भर,
उनके चिर अस्पष्ट भाग्य, उनकी साधारण खुशियों पर,
सुन न सके ऐश्वर्य घृणाप्लुत स्मिति से कभी कथा उनकी,
दीनों का संक्षिप्त, सरल, सच्चा इतिहास, व्यथा उनकी ।

है अक्षय न शक्ति का गढ़ भी और न नेतृत्वाभिमान स्थिर,
और सभी जो धन अथवा सौन्दर्य दे सके, है अस्थिर;
जुड़ा हुआ है साथ सभी के दुर्निवार्य अन्तिम क्षण-छोर,
और विभव का पथ ले जाता है केवल समाधि की ओर ।

अरे न ओ आभमान ! दोष तू भी इन पर मढ़ने पाए,
यदि न स्मृति इनकी समाधि पर विजय-चिन्ह गढ़ने पाए,
जहाँ दूर तक बराम्दों में औ' कक्षों में अति सुखकर
गूंजा करते सदा प्रशंसायुत गीतों को लय के स्वर ।

किन्तु क्या कभी भव्य स्मारक, अस्थि-पात्र या मूर्ति-विशाल
ला पाते इस तन में लौटाकर उखड़ी साँसों का जाल ?
क्या सम्मान, प्रशस्ति मूक मिट्टी का मन बहला सकती ?
या, क्या चाटुकारिता बधिर मृत्यु को है फुसला सकती ?

इसी उपेक्षित भूमि-गर्भ में छिपा हुआ है हृदय अजान,
किसी समय जो अनुप्राणित था शाश्वत ज्वाला से छविमान,
कर, ऐसे जो राजदण्ड धारण कर सकते थे भू पर,
अथवा मुखरित कर देते जो विरहिणि वीणा के मृत स्वर ।

किन्तु ज्ञान-पुस्तक के पृष्ठ न उनके दृग पढ़ सके कभी,
जो समृद्ध समय के अनुभव से होते हो गए सभी;
घोर अभावों ने कुचलीं उच्चाकांक्षाएँ अन्तर की,
और किया निस्तेज धधकती ज्वाला को उनके उर की ।

लाल अनेकों ज्योति-पुंज-आभा-दीपित संसार लिये
रहते हैं प्राणों पर तममय अगम उदधि का भार लिये;
अनदेखे ही खिलने को उत्पन्न सु-मन कितने होते
जीवन भर जो मरू-भू में हैं व्यर्थ खिले सौरभ खोते ।

जो कि निरंकुश सत्ता के विरोध में खड़ा हुआ था वीर,
कोई मौन उपेक्षित मिल्टन यहाँ पा रहा है विश्राम,
या न देश-शोणित-क्षय का अपराधी क्रॉमवेल निष्काम।

मन्त्रि-परिषदों में निज भाषण से पाना सम्मान विपुल,
नाश और दुख की चिन्ताओं से न कभी होना आकुल,
कर देना समृद्ध देश को, निज इतिहास अमर करना,
यह सब था न भाग्य में उनके, अमर कीर्ति पाकर मरना।

उनका भाग्य न कर पाया सीमित केवल गुण ही उनके,
होने वाले पापों से भी बचा लिया तन को उनके,
लेने दिया उन्हें नृशंस-बध-पथ से कभी न सिंहासन,
बन्द न होने दिया मनुजता के प्रति उनका दया-सदन।

वे न कभी चैतन्य सत्य का गला घोंट पाए जग में,
कभी न बन निर्लज्ज, छिपा पाए लज्जा-लाली दृग में,
शोषित कवियों को न कभी ले विवश प्रशंसा-समिधाएँ
वे विलास की और गर्व की अग्नि प्रज्ज्वलित कर पाए।

दूर रहे वे इस पागल जग के झंझटमय जीवन से,
भटक न पाईं उनको अभिलाषाएँ कहीं, कभी मन से,
चलते गये सदा निज एकाकी, समतल जीवन-पथ पर,
अनवरुद्ध निःशब्द सफ़र में रुके न कहीं कभी थक कर।

फिर भी इन हड्डियों का न हो सके कभी जिससे अपमान,
यहाँ खड़ा है जीर्ण स्मारक रक्षा हेतु लिए अरमान,
अंकित हैं इस पर कुछ भौंडे चित्र और लयहीन विचार,
माँग रहा यह केवल सूनी आहों का अमूल्य उपहार ।

जन्म, मरण-तिथि, नाम किये हैं अनपढ़ शिल्पी ने अंकित,
जिससे कहीं न रह जाए यह भवन मर्सिया से वंचित;
कुछ पौराणिक वाक्य कर दिये हैं अंकित उसने इस पर,
जो सिखलाते ग्राम्य नीतिवादी को मर जाना हँसकर ।

कौन मूक विस्मृति का बना शिकार, गया है इस जग से
बिन देखे मुड़कर अतीत के सुख को ललचाए दृग से ?
त्याग जगत का ममता, मोह, सुदुर्लभ प्राणों का वरदान
कौन जिन्दगी की सीमा के पार गया, होकर अम्लान ?

सदा बिछुड़ता जीव किसी के स्नेह-प्राप्ति को आस लिए,
होते बन्द नयन आँसू की दो बूँदों की प्यास लिए,
जड़ समाधि से भी तो प्रकृति पुकारा करती निज स्वर में,
ज्वाला रहती छिपी हमारी बुझी राख के भी उर में ।

कोई भी सम्मान मिले बिन मरने वालों की स्मृति में,
तू, जो इन शब्दों में कहता कथा कलाहीन कृति में,
आएगा यदि यहाँ कभी एकांत-मनन-प्रेरित प्राणी,
कथा भाग्य की तेरे भी तब पूछेगी उसकी वाणी ।

तभी श्वेत-केशी किसान कोई उसको देगा उत्तर—
"कभी कभी देखा है हमने उसे उषा के आने पर,
द्रुतगामी पग से नीहार-कणों को बुहारते, गाते
मिलने हेतु बाल रवि से ऊँचे मैदानों पर जाते;

"वहाँ सामने मस्ती से हिलते उस ऊँचे वृक्ष तले
जो कि गूँथता है ऊपर अपनी शाखों के हार भले,
फैला देता था वह अपना श्रांत शरीर दोपहर को,
और एकटक देखा करता कल कल करते निर्झर को;

"पास सामने के वन में ही कभी घृणा से मुस्काता,
निज कल्पना-लोक में लीन हुआ गुनगुन करता जाता,
कभी लड़खड़ाता एकाकी सम कृशगात, मलिन, दुखरत,
ज्यों हो चिंतातुर या असफल-प्रीति-वेदना से आहत;

"एक दिवस मैंने उस पर्वत पर न कहीं उसको पाया,
झाड़ी के समीप, प्रिय वृक्ष-तले न मिली उसकी काया,
अगला दिन भी आया किंतु न था वह उस निर्झर के पास,
और न उन मैदानों में, या वन में जहाँ उग रही घास;

"अगले दिन देखा उसको ले जाए जाते अर्थी पर
करुण मर्सिया-गान सहित धीरे धीरे गिरजा-पथ पर,
जाओ और पढ़ो न, (क्योंकि तुम पढ़ सकते हो) पत्थर पर,
उन बूढ़े काँटों के नीचे, अंकित जहाँ निम्न अक्षर।"

स्मृति-वाक्य *(EPITAPH)*

यहाँ भूमि की गोद सिर रखे एक युवक पाता विश्राम
रहे अपरिचित जग में जिसके लिए प्रसिद्धि, विभव के नाम,
उसके हीन जन्म पर भ्रू-कुंचन विज्ञान न कर पाया,
सूनेपन ने उसे सदा के लिए, निज समझ, अपनाया।

थी आत्मा निर्मल उसकी औ' उदारचेता हृदय महान्,
फलस्वरूप विधना ने उसको दिया एक अनुपम वरदान;
दिया व्यथा को उसने निज सर्वस्व एक ही अश्रु, मगर
पाया विधना से उसने अपना मनचाहा—मित्र प्रवर !

अब मत और गुणों को उसके तुम प्रकाश में ला बोनो,
या उसकी दुर्बलताओं से उनका चिर निवास छीनो—
(वहाँ कर रहे वे दोनों कृश आशारत विश्राम अचल)
—उसके परम पिता परमेश्वर का सुखदायी वक्षस्थल।

(अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि Thomas Gray की Elegy Written in a Country Churchyard का अनुवाद।)

●

?

एक याद आई जो प्राणों में बस गई,
एक पीर जागी जो तन मन को डस गई;
यों तो बीतने को बीत ही गई जिन्दगी,
किन्तु रूप की झलक
खोल गई ये पलक;
बढ़ गई जो ललक
बन्धन में कस गई।

*　　*　　*　　*

दिन ढला फिर भी न जीवन में शाम हुई,
दुख पला फिर भी न अलसित मुस्कान हुई;
क्या कहें कब कहाँ कारवाँ यह रुक गया ?
आँख जो पड़ी छलक
अश्रु थे पड़े ढुलक;
भर गई जो पुलक
बरसा नव रस गई।

*　　*　　*　　*

कुछ कहा और कुछ बिना ही कहा रह गया,
कुछ किया और कुछ बिना ही किया रह गया;
किन्तु कुछ कहने औ' करने का मोह सदा
मन में पला किया,
जीवन छला किया;
सब कुछ गला किया,
जागी उमस नई।

सॉनेट

छूता हूँ मैं फूल नहीं जिससे न कहीं यह मुरझाए,
अभी खिला है जो यौवन के बेसुध काँटों में हँसकर,
बिखरा है धरती पर यौवन प्रेयसि का, पर शशि सुन्दर
चुम्बन करता नहीं कि जिससे रूप न शरमाने पाए।

नए कुसुम अपनी मस्ती में वन उपवन में मुस्काए,
किंतु इन्हें क्या ज्ञात कि पीछे पतझड़ भी आता छिप कर
जो न क्षमा करता अल्हड़ यौवन की भी भूलें प्रियतर,
इसीलिए ये क्षणिक वसंत-प्रसाद प्राप्त कर इठलाए।

अभी चाँदनी गहन तमिस्रा की अलकों में सोई है
बेसुध-सी पलकों में शशि का मधुर सुधा-मद-भार लिये,

इसे क्या पता कितनी बार निशा जी भर कर रोई है,
यह तो बहलाती निज यौवन सपनों का संसार लिये।

मिट जाएगी सुन्दरता जो अपने में ही खोई है,
रह जाएगी स्मृति ही केवल निज अनसुनी पुकार लिये।

●

गीत

मर कर भी जो अमर हो गये, हम उनको इन्सान कहेंगे ।

क्षण भर को ही जो जग को देता प्रकाश, वह दीप नहीं है,
जो न अनश्वर स्वर-शर से जीवित करता, वह गीत नहीं है;
जीवन के संघर्षों की मरु में मिट जाते जो जल-कण सम
उनके जीवन की गति को हम अस्तोन्मुख उत्थान कहेंगे ।
मर कर भी जो अमर हो गये, हम उनको इन्सान कहेंगे ॥१॥

मिटने वाले तारों को गिन गिन कर कितनी रातें रोतीं,
अलसाई नव कलिकाओं-सी आँखें ओस-अश्रु से धोतीं;
किंतु अमरता के प्रतीक उस ध्रुवतारे का ध्यान किसे है
जिसके यश को ही केवल, हम मर्त्य-लोक-वरदान कहेंगे ।
मर कर भी जो अमर हो गये, हम उनको इन्सान कहेंगे ॥२॥

अंगारे खाकर चकोर निज अमिट तृषा को सरस बनाता,
किन्तु स्वाँति की अचल आस में चातक नित्य पुकार मचाता;
एक प्यास की तृषा बुझाता, एक तृषा की प्यास बढ़ाता,
बुझ जाती जो तृषा उसे नव तृष्णा का सोपान कहेंगे ।
मर कर भी जो अमर हो गये, हम उनको इन्सान कहेंगे ॥३॥

प्रबल-प्रणय-प्रेरित-पतंग निज दीप-प्रकम्पित प्राण-पंख पर,
मर कर भी अमरत्व प्राप्त करने को आ जाते हैं सत्वर,
जल कर अमर हुआ करते वे, जीवित दीप विरह में जलता,
जीने वाले से मिटने वाले की प्रीत महान कहेंगे।
मर कर भी जो अमर हो गये, हम उनको इन्सान कहेंगे ॥४॥

लाँघ न पाते जो जीवन भर देश-काल की सीमाओं को
प्राणहीन सम जीवित वे लज्जित करते जड़ प्रतिमाओं को,
पर पुष्पित होते हैं जो सुरभित करने को जग का उपवन,
उनके मुरझाने को भी हम विधि की मृदु मुस्कान कहेंगे।
मर कर भी जो अमर हो गये, हम उनको इन्सान कहेंगे ॥५॥

नीलकण्ठ सम जो जग का दुखदैन्य-विषामृत पी लेते हैं,
मरते तो हैं सभी विश्व में, पर वे पल भर जी लेते हैं,
करते जो विषहीन जगत को, वे न काल-विष से मिट पाते
अमर बनाता जो जीवन को, हम न उसे विष-पान कहेंगे।
मर कर भी जो अमर हो गये, हम उनको इन्सान कहेंगे ॥६॥

जो देवत्व मनुज को देकर दानवता का पाश छुड़ाते,
सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का आकाश धरा के निकट झुकाते,
जो मानव-उर कलुषहीन करते निज त्याग, स्नेह के जल से
जग चाहे कुछ भी कहता हो, हम उनको भगवान कहेंगे।
मर कर भी जो अमर हो गये, हम उनको इन्सान कहेंगे ॥७॥

●

गीत

सुमन खिले हैं मधुवन में ।

मस्त भ्रमर भी आतुर हैं कस जाने को आलिंगन में,
सुमन खिले हैं मधुवन में ।

लहराता किसलय का आँचल इनको गलबाँहीं देता,
झूम झूम कर अलि-दल बिखरे मधु सौरभ का रस लेता;
इठलाते, शरमाते, मदमाते अपने नव यौवन में,
सुमन खिले हैं मधुवन में ।

मधुर पराग बिखर पड़ने को उत्सुक, आतुर मचल रहा,
भिक्षु पवन सकुचाया मौन याचना में हो अचल रहा,
किंतु छिपा संकोच आज है दोनों के हृत्कम्पन में ।
सुमन खिले हैं मधुवन में ।

सुन्दरता है छद्म वेश केवल कंटकमय यौवन का,
कलुषित मन ही केवल सत्य रहा इनके सुन्दर तन का,
ऊपर से अति कोमल, किंतु छिपे काँटे इनके मन में ।
सुमन खिले हैं मधुवन में ।

●

गीत

मृत्यु-सुन्दरी झाँक रही जीवन-अवगुंठन खोल ।

दुर्बल पौरुष देख मर्त्य का सबल बाहु निज फैलाकर
नित्य नये यौवन को अपने अंक भेंटती फुसलाकर,
जब यह अपना लास दिखाती, चाँद सितारे हँसते हैं
उन पर, जो सब जान-बूझकर भी इस छल में फँसते हैं;
जड़ पंकज की पंखुड़ियों में तृषित भ्रमर सम फँसकर भी जो
मधु-रस माँग रहे पलभर को, जीवन का दे मोल।
मृत्यु-सुन्दरी... ....॥१॥

यह न किसी की हुई आज तक किन्तु सभी को रही सदा,
जीवन के कंटकाकीर्ण पथ के राही को यह सुखदा,
श्रांति मिटा विश्राम दिया करती यह सबको ही आकर,
पुनर्जन्म हित नवस्फूर्ति देती यह पलभर मुस्काकर;
आदि काल से सुना रही है बेसुध, बहरे, विवश मनुज के
प्राणों के तारों पर अपने निठुर राग के बोल।
मृत्यु-सुन्दरी... ... ...॥२॥

रोते हैं ईर्ष्यालु मनुज जब किसी एक को यह वरती,
इसीलिए सबको ही समयोचित सम्मान दिया करती,
पर न सतीत्व इसे भाता है, ध्यान न इसको पतिव्रत का,
प्यासों को परवाह न इसको, भेद न इसे विषामृत का;
जग की उजड़ी महफ़िल में क्षण भर आनन्द मनाने वाले
रसिकों को है पिला रही निज प्याले में विष घोल।
मृत्यु-सुन्दरी... ... ...॥३॥

●

अठारह सौ सत्तावन के शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि

आज शहीदों की समाधि पर फूल नहीं, तुम अश्रु चढ़ाओ ।

मुरझाते हैं फूल मगर ये अश्रु नहीं मुरझाते,
सुखा दिये जाने पर भी आँखों में भर भर आते;
ऐसा दो उपहार कि जिससे जग ज्योतित हो जाए,
जड़ मिट्टी के नहीं, हृदय को श्रद्धा के तुम दीप जलाओ ।

बुझ जाता है दीप मगर यह मन न कभी बुझ पाता,
अगणित पीड़ाओं को सहकर भी मुस्काता जाता;
आज करो सम्मान देश पर मिटे हुए पौरुष का,
शमा नहीं, जलने वाले परवानों की तुम याद मनाओ ।

देश शमा था, परवाने बन जले शहीद अनेकों,
तूफ़ानी गति से आगे बढ़ चट्टानें दलने को,
रोक सकीं कब उनके बढ़ते सीनों को संगीनें;
आँसू से अब मोम नहीं, तुम लोहे, पत्थर को पिघलाओ ।

लोहे भी गल गये मांस के इन्सानों से भिड़कर,
मिटी दनुजता मानवता के अरमानों से लड़कर;
चिता देश पर मिटने वाले अमर शहीदों की तुम
अभी बुझाओ नहीं, आग से आग पुनः जग में सुलगाओ।

आग, कि जिसमें जली देश की उभरी हुई जवानी,
कोमल मैना, वज्र ताँत्या, दृढ़ झाँसी की रानी;
—आग, कि जिसमें भस्म हुआ अत्याचारों का कल्मष :
रुको नहीं, आगे बढ़ने की नई राह जग को दिखलाओ।

नई राह, बढ़ गए कि जिस पर क्रांतिदूत सेनानी,
सदा जिन्होंने कुछ करने या मरने की थी ठानी;
तुम्हें शांति देने को झुलसे वीर क्रांति में अगणित,
आज शांति में खुद को भूले, मत उनका एहसान भुलाओ।

अट्ठारह सौ सत्तावन की याद नया बल भरदे,
याद शहीदों की इस मन की लाचारी कम करदे,
दौड़े फिर से नया रक्त, फिर नयी उमंगे जागें;
उठो, साथ एशिया तुम्हारे, फिर से ऊँचा उसे उठाओ।

तोल रहा है न्याय आज इन्सान ऐटमी बम से,
लिखता है इतिहास खून में डूबी हुई क़लम से;
घात लगाए बैठे हैं, वे चाहें जो कुछ सोचें,
किन्तु न दुर्बल है भारत, यह सभी स्वार्थियों को बतलाओ।

यद्यपि भारत शांति चाहता पंचशील के बल से,
किन्तु न समझें लोग कि उसको दबा सकेंगे छल से;
शांत हुआ है भीम आज तो उसे न निर्बल समझो,
काश्मीर को बना द्रौपदी कभी न अपना दाँव लगाओ।

याद करो उन अमर शहीदों को जो आज नहीं हैं,
याद करो उन आहों को जिनमें आवाज नहीं है,
याद करो आजादी के दीवानों की कुर्बानी,
फूट पड़े यदि विवश सिसकियाँ, श्रद्धांजलि का अर्घ्य चढ़ाओ।
आज शहीदों की समाधि पर फूल नहीं, तुम अश्रु चढ़ाओ।

(प्रथम भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम १८५७ के शताब्दी-समारोह
के अवसर पर १०-५-५७ को रचित)

●

मैं, तुम

मैं,
तुम,
नज़रें,
संकेत,
धड़कनें,
उच्छ्वास
और
न जाने
क्या क्या !

रात,
सपने,
चित्र,
तुम,
उमस,
घुटन,
करवटें
और
सवेरा ।

याद,
दूरी,
बेबसी,
ज़िन्दगी,
ख़ामोशी,
सूनापन
और...
... !

●

मिले हो आज मनभावन !

मिले हो आज मनभावन !

न जाने कौनसी है शक्ति जिससे चल रहा हूँ मैं,
न जाते कौनसी है साँस जिस पर पल रहा हूँ मैं,
न जाने कौनसा है स्नेह जिससे जल रहा हूँ मैं,
न जाने क्यों तुम्हारी प्रीति पर विश्वास है मुझको;
तुम्हारे एक इंगित पर,
रहा था भार जो मुझको, बना है फूल वह जीवन,
नया है आ गया सावन ।
मिले हो आज मनभावन ॥१॥

कभी मैं दूर था पर पास आने को तरसता था,
कभी मजबूर था पर पंख पाने को तरसता था,
नशे में चूर था पर होश लाने को तरसता था;
तुम्हीं ने कल्पना-शिशु के करों में सत्य-शशि देकर,
अमा को चाँदनी देकर,
सदा के हो लिए बहला दिया है इस हृदय का मन
रहा जो आज तक उन्मन ।
मिले हो आज मनभावन ॥२॥

तुम्हें पाकर सऊर का पा गया मैं आज हमराही,
तुम्हें छूकर बना पाषाण से घृत-मूर्ति मनचाही,
तुम्हीं में लीन होकर खो दिया अपनत्व अपना ही;
क्षणिक है किन्तु यह मधुऋतु, जरा सी देर का यह सुख
प्रतीक्षा कर रहा पतझड़;
अतः संकोच का या मान करने का न है यह क्षण,
सभी उन्माद, पागलपन ।
मिले हो आज मनभावन ॥३॥

घड़ी भर ठहर जाओ, देख लूँ मैं रूप जी भर कर,
घड़ी भर चुप रहो, पहचान लूँ मैं रागिनी के स्वर,
घड़ी भर मुस्कुरा दो, रोक दूँ मैं अश्रु के निर्झर,
नहीं तो बीत जाएंगे अनेकों क्षण, हजारों युग,
नियति तब लूट लेगी सुख;
अधर होंगे अधर पर, किन्तु होगा दूर आकर्षण,
छलेंगे क्रूर परिवर्तन ।
मिले हो आज मनभावन ॥४॥

गीत

तुम मुझको कहते पागल !
क्योंकि तुम्हारे इंगित पर मैं नाच नहीं पाता प्रतिपल ।
तुम मुझको कहते पागल !

मिला भाग्यवश तुमको यह जीवन अगणित क्रीड़ाओं का,
किन्तु कभी न तुम्हें अनुभव हो पाया है पीड़ाओं का,
इसीलिए तो मिला सदा केवल परिहास मुझे तुमसे,
जितना तुम से प्रेम किया उतना जीवन में पाया छल ।
तुम मुझको कहते पागल !

जब प्यासा था, कभी न तब तुम विष भी मुझे पिला पाये,
प्यास नहीं है अब क्यों लेकर अमृत का प्याला आये ?
यह तो मुझे ज्ञात है, तुम भी सीमाओं में बँधे हुए,
किन्तु बना डाला क्यों तुमने मेरे मन को उच्छृङ्खल ?
तुम मुझको कहते पागल !

दर्शन की अभिलाषा थी जब, रहे अरूप अजाने तुम,
आज नयन जब बन्द हो चुके, आये मुझे लुभाने तुम,
आँख-मिचौनी करते रहते तुम मेरे इस जीवन से,
यों ही सदा मचाते रहते मेरे प्राणों में हलचल ।
तुम मुझको कहते पागल ।

जब इस उर में ज्वार उठा था, तब शशि सम तुम दूर रहे,
दीन, विनत था जब मैं, तब तुम अपने मद में चूर रहे,
किन्तु आज विश्वास उठ चुका मेरा आत्म समर्पण से,
तब क्यों परछाई सम छोड़ न पाते तुम मेरा अंचल ?
तुम मुझको कहते पागल ।

जब मैं रो-रो पिघला देता था अविचल पाषाण-हृदय,
तब भी तुम थे उदासीन मेरी पूजा के प्रति, निर्दय !
किन्तु शान्त, विश्रान्त हुआ मैं आज समय की गति से जब,
क्यों करने आये हो मेरे शुष्क हृदय को सरस, सजल ?
तुम मुझको कहते पागल ।

गीत लिखे जब मैंने अगणित तुम्हें रिझाने को प्रियतम,
तब न उन्हें सुनने का मिल पाया अवकाश तुम्हें, निर्मम !
किन्तु आज सुनने आये हो मेरी स्मृति का अंतिम गीत,
जब कि अलस लेखनी हो चुकी सदा के लिये हो निश्चल ।
तुम मुझको कहते पागल ।

●

एक बालक की मृत्यु पर

नभ से एक सितारा टूटा, धरती का यह दीप सो गया।

जला प्रणयरत दो हृदयों के संघर्षण की चिनगारी ले,
पला हृदय का दुग्ध-स्नेह पी, चंचलता अपनी लौ-सी ले;
जीवन-अवधि-वर्त्तिका पर, अति लघु-सी डाली थी विधना ने
अतः तम-हरण-हित प्रेषित दीपक यह क्षणिक, अदीप्त हो गया।
धरती का यह दीप सो गया।

अभी उगा था नवल कलाधर अलस उनींदे नयन सदृश यह,
किन्तु अनोखी कला दिखाने से पहले ही हुआ अदृश यह;
आज तिरोहित हुई व्योम के ज्योति-पुंज की नवल किरण यह,
पल भर को तम का विष पीकर अमिट व्यथा के बीज बो गया।
धरती का यह दीप सो गया।

अम्बर के अगणित तारों को इस तारे का ध्यान नहीं था,
धरती के अनगिन दीपों को इस दीपक का ज्ञान नहीं था;
किन्तु बुझा जब ही यह दीपक—टूटा जब यह तारा नभ का,
सबको इसका शून्य खल उठा ज्यों वारिद जलहीन हो गया।
धरती का यह दीप सो गया।

इसके लौ-कंपन की लय में दर्द रागिनी बन मचल उठा,
इसका अन्तिम भ्रू-कुंचन लख आशा का हिम-शिखर गल उठा;
आ पहुँचा अंततः की निष्ठुरतम झंझा का झोंका,
और मृत्यु के प्रलय-राग में जीवन का संगीत खो गया।
धरती का यह दीप सो गया।

किन्तु सदा के लिए कभी भी बुझ न सकेगा दीप अमर यह,
आज बुझा, कल फैलाएगा अधिक प्रकाश पुनः जलकर यह;
जलने, बुझने, फिर जल उठने का यह क्रम यों ही चलता है,
कल फिर देख सकेंगे हम, जो आज कल्पनातीत हो गया।
धरती का यह दीप सो गया।

●

गीत

मत करो शृंगार रूपसि, रूप यह मेहमान केवल चार क्षण का।

ये सुडौल उभार काया के न कल बाकी रहेंगे,
फूल यौवन के, जरा की निठुर आँधी में बहेंगे,
क्षणिक आकर्षण न ये कल साथ देंगे श्रांत तन का,
प्रीति के ये पंख कल होंगे स्वयं ही भार मन का;
देख लो इस कनक-मंदिर का बना आधार केवल धूलि-कण का।
मत करो शृंगार रूपसि, रूप यह मेहमान केवल चार क्षण का ॥१॥

चमकती यह वेणियाँ कल सर्प बन तुमको डसेंगी,
क्षीण-कटि की ऊर्मियाँ बन बेड़ियाँ तुमको कसेंगी,
गाल मछली-से फसेंगे झुर्रियों के जाल में कल,
दर्द से अकुला उठेंगी कल यही बाँहें सुकोमल;
रूप का ढलना, जरा का आगमन, है चिन्ह जीते-जो मरण का।
मत करो शृंगार रूपसि, रूप यह मेहमान केवल चार क्षण का ॥२॥

मदभरे ये नयन करुणा-याचना से पूर्ण होंगे,
काँच के अधरोष्ठ यह चुम्बन-शिला पर चूर्ण होंगे,
कल इसी आलिंगनोत्सुक वक्ष में तूफ़ान होगा,
रात्रि के अभिसार का चिर रात्रि में अवसान होगा;
ह जवानी का उजाला दूत है अवसादमय तिमिरावरण का।
ात करो शृंगार रूपसि, रूप यह मेहमान केवल चार क्षण का ॥३॥

तुम समझती हो, दिखाता मुकुर यह मुखड़ा तुम्हारा,
पर दिखाता यह तुम्हारे हृदय का अभिमान सारा,
कल यही खिल्ली उड़ायेगा तुम्हारी विगत छबि को,
है भ्रमर यह आस करता जो सदा केवल सुरभि को,
ल तुम्हें श्रीहत समझ, निर्लज्ज बन, यह दुःख देगा हरित व्रण का।
ात करो शृंगार रूपसि, रूप यह मेहमान केवल चार क्षण का ॥४॥

कल तुम्हारे रूप की गरिमा मिलेगी मृत्तिका में,
और यह उन्मुक्त यौवन विवश रोयेगा चिता में,
छोड़ दो अब यह ख़ुमारी, होश में आओ तनिक तो,
तोड़ दो दर्पण सुमुखि ! यह ज्वार ठहराओ तनिक तो;
ीत जायेगा अगर, फिर आ न पायेगा सुअवसर जागरण का।
ात करो शृंगार रूपसि, रूप यह मेहमान केवल चार क्षण का ॥५॥

●

गीत

जागता कवि मौन निशि में, सो रहा जग नींद पाकर।

खो रहा कोई सजीले स्वप्न की दुनिया बसाए,
सो रहा कोई हृदय में प्रीति की गाथा छिपाए,
जागता विरही विरह की कसकती पीड़ा दबाए;
किन्तु कवि पीड़ा दबाना चाहता है गीत गाकर,
प्रेम की गाथा हृदय से आज पल भर को भुलाकर।

दूर कोई आँख के मोती लुटा कर रो रहा है,
और कोई मधु-स्मृति के कंठ-हार पिरो रहा है,
शुभ-मिलन की आस में कोई विकल अब हो रहा है;
किन्तु करता है प्रतीक्षा कवि सतत् दीपक सजाकर,
ज्वाल अन्तर की बुझाता दीप का अन्तर जलाकर।

वासना है घुल रही चिर तृप्ति की ही याचना में,
कामना के नयन बोझिल स्वप्न की नीराजना में,
साधना है मग्न अविचल, साध्य की आराधना में;
किन्तु कवि कुछ खोजता जीवन, जगत से दूर जाकर,
सत्य, शिव, सौंदर्ययुत अपनी नई दुनिया बसाकर।

●

महाकवि कीट्स के प्रति

ओ वाणी के मन्दिर के असमय बुझ जाने वाले दीप!
अगणित सुन्दर मुक्ताओं को गढ़ने वाली अनुपम सीप!
ओ, वीणा के तारों को अनुपम भाषा देने वाले!
चिर-निराश प्रेमी-उर को शाश्वत आशा देने वाले!

तुमको रोकर, सिसक-सिसककर सुन्दरता करती है याद,
क्योंकि तुम्हीं थे कलमषयुत जग के कोलाहल में अपवाद;
तुमने जग को दिया अमिट सौंदर्य-प्रकाश परम उज्ज्वल,
किन्तु बुझाने चला तुम्हें अज्ञानी जग का तमसांचल।

थे सुकुमार, पुकारा तुमने कोमलतम मानव-उर को,
किन्तु क्रूर मष्तिष्क सुन सका कब उस करुणामय स्वर को?
माँगा था विश्वास-दान, पर मिले तर्क के तीर तुम्हें,
स्नेह न मिल पाया, पर मिलती रही उपेक्षा-पीर तुम्हें।

सफल चितेरे थे तुम भावों को अदृश्य रेखाओं के,
शब्दों में कर दिये तुम्हीं ने मूर्त्तिमान स्वर आहों के;
ले तुमने कल्पना-इन्द्रधनु से नैसर्गिक रंग विचित्र,
रँगे सत्य को सधी तूलिका से सुन्दरता के चल-चित्र।

शब्दों की कलिकाओं के अधरों को दी मुस्कान अमर,
तुमने मुखरित किये युगों से मौन हृदय-वंशी के स्वर—
"है सौंदर्य सत्य शाश्वत, औ' अचल सत्य सौंदर्य अजर,
देती है आह्लाद सदा ही सुन्दरता की निधि अक्षर।"

मुक्त विहग! तुम उड़े कल्पना-पंखों पर नभ के उस पार,
रवि-शशि के महलों से ले आये अनुपम सौंदर्य उतार;
प्राणों की वर्त्तिका सँजोई तुमने सुषमा-अर्चन हेतु,
सत्य और कल्पना बीच बाँधा तीव्रानुभूति का सेतु।

आज 'ग्रीशियन अर्न' में ढकी राख रो उठी मचल मचल,
क्योंकि तुम्हीं ने याद दिलाया इसको इसका बीता कल;
मधुऋतु औ' पतझड़ के तुमने किये अनेकों चित्र मुखर,
सुना रहे हैं एक साथ ही, वे संगीत, ध्वंस के स्वर।

चित्रित किया शब्द-रेखाओं में इन अनुपम भावों को,
किन्तु कल्पना दूर न कर पा सकी यथार्थ अभावों को;
जीवन-हिम गल गया तुम्हारा जग के अपमानातप से,
तुम घुल गये साधना में ही, अमर हुए अपने तप से।

ओ सुन्दर कवि! कैसे तुमको कलुषित उर से स्मरण करें?
उचित यही है, प्रथम हृदय से दूर कलुष-आवरण करें।

●

गीत

बीते क्षण लौट न पाते ।
यद्यपि जगने पर भी स्मृति में टूटे सपने मुस्काते,
बीते क्षण लौट न पाते ।

युग बीत चले जाते प्रतिपल,
मिटता अधरों का हास धवल;
अभिलाषाएँ सिसका करतीं, आँसू बरबस ढुल जाते ।
बीते क्षण लौट न पाते ।

चेतन मन निज गति बन्द किये
रहता सुधि का मकरंद पिये;
अवचेतन मन के भाव तभी कुछ मग्न हुए-से गाते ।
बीते क्षण लौट न पाते ।

छलता हमको अपना ही छल,
वंचित रहते ये प्राण विकल;
है स्वत्व न जिस पर अपना कुछ, उसको पाकर इठलाते ।
बीते क्षण लौट न पाते ।

कितना निरुपाय बना जीवन,
परवशता में बन्दी यौवन;
हम भावी पीड़ाओं का गत सुख से हैं मोल चुकाते ।
बीते क्षण लौट न पाते ।

●

गीत

यह व्यथा का भार कैसा ?

कामना अंधी भिखारिन,
माँगती वरदान दुर्लभ,
किन्तु धरती के दुखों से
कब द्रवित होता निठुर नभ;
चिर अभावों का विभव से
यह प्रणय-व्यापार कैसा ?

पा किसी का एक इंगित
होश था मैंने सम्हाला,
मूर्ख मन ने उल्लसित हो
प्यार का अभिमान पाला;
किन्तु टूटे स्वप्न का अब
सत्य से अभिसार कैसा ?

आज अनजाने बने फिर
हम परस्पर, चिर अपरिचित,
यदपि दोनों हृदय युग से
हैं सहज ही स्नेह-सिंचित;
मीत दो रहते अपरिचित,
यह निठुर संसार कैसा ?

●

गीत

तुम सरस सुधा सम आये ।

मेरे जीवन के मरुथल में,
युग से प्यासे अन्तस्तल में,
संतप्त हुए प्राणों में सुखकर
सजल मेघ बन छाये ।
तुम सरस सुधा सम आये ।

तुम आये ज्यों सपने आते
पल भर को जो बहला जाते,
उर हाथ पसार नहीं पाया,
तुमने मोती बिखराये ।
तुम सरस सुधा सम आये ।

भिक्षा मैं माँग नहीं पाया,
पर तुम्हें भेंट देने आया,
लाया सयत्न कामना-रत्न
तुमने तुरन्त ठुकराये ।
तुम सरस सुधा सम आये ।

माना कि अकिंचन हूँ जग में,
पर मुक्ता हैं मेरे दृग में,
पाषाण ! पिघल जाओ अब भी,
आरती न बुझने पाये ।
तुम सरस सुधा सम आये ।

●

तुमने मुझे पुकारा

तुमने मुझे पुकारा !

साँस रुक गई,
प्राणों के रथ चलते चलते रुके;
लौट आया साहस अविरत पथ पर चलते रहने का,
धारा में बहने का;
आशाओं के कर फैला
नयनों ने तुम्हें निहारा।
तुमने मुझे पुकारा !

आँख झुक गई,
गीतों के पग थकते थकते रुके;
पास आया जीवन का चरम लक्ष्य पूरा होने का,
तुममें ही खोने का;
मैंने जीवन में संचित
सब कुछ ही तुम पर वारा।
तुमने मुझे पुकारा !

स्वनिधि चुक गई,
दृग के मोती ढुलते ढुलते रुके;
दूर खोया मन को जो मिला कभी वर सुख पाने का,
मुस्काते जाने का;
विजय तुम्हारी रही, मगर
कुछ कहाँ कभी मैं हारा ?
तुमने मुझे पुकारा !

मिली तुक नई,
भाव छन्द बिन पलते पलते रुके;
स्वयं पाया अधिकार तुम्हारी लय में लय होने का,
अपनी गति खोने का;
तुमसे जो कुछ मिल पाया
वह सब ही मुझको प्यारा ।
तुमने मुझे पुकारा !

●

गीत

वर्षा है यह नहीं, किसी के गीतों के ये अश्रु झर रहे ।

तारों के वह शब्द मिट गये,
रवि-शशि की कल्पना छुट चुकी,
किरणों की भावना घुट चुकी,
इन्द्रधनुष के छन्द लुट गये;
नभ के नयनों से ढुल-ढुलकर वक्ष भूमि का सजल कर रहे।

अविरत चलती रही सदा ही
मौसम की लेखनी कष्टहर,
किन्तु व्योम के स्वर्ण-पृष्ठ पर
फैल गई मेघों की स्याही;
किसी अपरिचित निधि से उठकर भिक्षु-स्मृति का कोष भर रहे।

विधि का प्रगतिशील कवि फिर से
नये गीत की सृष्टि करेगा,
नव किरणों की वृष्टि करेगा
नव नभ का अरुणिम रवि फिर से;
पीड़ा से उत्पन्न हुए ये किन्तु दृगों की पीर हर रहे ।
वर्षा है यह नहीं, किसी के गीतों के ये अश्रु झर रहे ।

●

गीत

मंज़िल से पहले ही रुकना, पथिक तुम्हारा काम नहीं है।

देखो, सरिता बढ़ती ही जाती सागर से मिलने को,
शलभ सदा बढ़ता ही जाता प्रिय दीपक पर जलने को,
उदधि नदी को, दीप शलभ को, आलिंगन में भर लेता,
जो न खींच लाती अपने तक मंज़िल उसका नाम नहीं है।
मंज़िल से पहले ही रुकना, पथिक तुम्हारा काम नहीं है ॥१॥

जीवन का ही नाम दूसरा प्रगतिशीलता है जग में,
हो जाता है अन्त, न रहती गति जब मानव के पग में,
अतः लक्ष्य तक बढ़ते जाना, लक्ष्य बनालो जीवन का,
आदि-अन्त के मध्य, वाक्य में, लगता पूर्ण विराम नहीं है।
मंज़िल से पहले ही रुकना, पथिक तुम्हारा काम नहीं है ॥२॥

मिलनोत्कंठित होगा क्या वह, जो न विरह में जल पाया,
सुखद छाँह को पहचाने क्या, जो न धूप में चल पाया,
श्रांत हुआ जो बैठ गया पथ में, न लक्ष्य पा सका कभी,
पर मंज़िल तक चलने वाले को मिलता आराम नहीं है।
मंज़िल से पहले ही रुकना पथिक तुम्हारा काम नहीं है ॥३॥

यद्यपि शूल बिछे हैं अगणित, अभी तुम्हारी राहों में,
किन्तु शीघ्र मंजिल भेंटेगी तुमको अपनी बाँहों में;
पथ की बाधाओं से कहीं न घबरा जाना पल भर को,
हतोत्साह हो बैठे रहना कहलाता विश्राम नहीं है।
मंजिल से पहले ही रुकना, पथिक तुम्हारा काम नहीं है ॥४॥

मंजिल स्वयं पास आ जाती, यदि साहस हो चलने का,
बाधाएँ हट जातीं, यदि साहस हो भाग्य बदलने का;
साध्य भिन्न, साधन विभिन्न, पर साधक सिद्धि प्राप्त करते,
होती विफल साधना, यदि अनुरक्ति, भक्ति निष्काम नहीं है।
मंजिल से पहले ही रुकना, पथिक तुम्हारा काम नहीं है ॥५॥

●

गीत

मुझको है विश्वास कि कोई मुझसे करता प्यार।

माना मैं हूँ दूर सभी से, पास न है मेरे कोई,
किन्तु मान लूँ कैसे, मुझसे प्यार नहीं करता कोई;
जबकि सुवासित जग का कण-कण प्रीति-सुरभि से रहा सदा
खोकर निज विश्वास मान लूँ क्यों जग को निस्सार ?

जब निशि की उलझी अलकों में खो जाता थककर दिनकर,
नयनों की पंखुड़ियों में बन्दी हो जाते स्वप्न-भ्रमर;
तब अदृश्य कल्पना-लोक से क्यों सुस्वादु रस-सा आकर
करता कौन क्षणिक जीवन की तृष्णा का उपकार ?

जब मेरे नीरस जीवन की प्यासी धरती अकुलाती
तब क्यों किसी सरस घन-उर से शीतल बूँद बरस जाती,
क्योंकि किसी के रस-सिंचित उर में है मेरा स्नेह भरा,
वही मुझे लौटा वह पाता निज ऋण से उद्धार।

शीतलता उपचार बनी कब अंगारों की तड़पन का ?
संयम रोक सका कब उठता ज्वार किसी पागल मन का ?
मैं ही फिर क्यों, हो विरक्त, उपहास करूँ निज जीवन का,
क्यों न प्रीति से झंकृत कर दूँ मन के निःस्वर तार।

सत्य न मिट पाया है अब तक, न ही कभी मिट पाएगा,
शिव निज वरद् हस्त से अभय-दान नित देता जाएगा,
फिर क्यों इनको प्राप्ति हेतु निज शक्ति क्षीण करता जाऊं,
डूबूँ क्यों न, सामने जब सुन्दर का पारावार ?

●

मेरा परिचय

जग पूछ रहा मेरा परिचय, मैं स्वयं न अपने से परिचित।

सब ही ठुकराकर चले गये पाषाण समझ मेरे तन को,
बन जाऊँगा भगवान कभी, यह ज्ञात न हो पाया उनको,
हूँ निराकार इसलिए भक्ति या श्रद्धा मुझे न मिल पाई,
पर इस अपमान, उपेक्षा से साधना न मेरी हिल पाई;
मिल जाएगा आकार कभी तो, मुझको है विश्वास यही,
पूजे जाने की इसीलिए तो मन में पलती आस रही;
है मेरा भी अस्तित्व जगत में, बस इतना ही ज्ञात मुझे,
शिल्पी न जिसे गढ़ पाया है मैं मूर्ति वही निज रूप रहित।
मैं स्वयं न अपने से परिचित ॥१॥

अब तक वृन्दावन, गोकुल, मथुरा गूंज रहे वंशी-स्वन से
जो प्राण पा गया मोहन के सुस्मित अधरों के कम्पन से;
निर्झर का कल-कल-रव, विहगों का कलरव, भ्रमरों का गुंजन,
स्वच्छन्द हुए ये सभी आज पा विकल समीरण से स्पंदन,
निस्पंद किन्तु मैं अब तक प्रिय के अधरों तक जो आ न सका,
संगीत-ध्वनित कल्पना-लोक निज उर का, जग में ला न सका;
है मेरा भी अस्तित्व जगत में, बस इतना ही ज्ञात मुझे,
मैं स्वर हूँ उसी मुरलिका का जो हो न सकी अब तक मुखरित।
मैं स्वयं न अपने से परिचित ॥२॥

आते हैं कितने ही मदिरालय में मेरा रस पीने को,
मदमाते बनकर दो क्षण ही इस मर्त्य-लोक में जीने को,
लेकिन अधरों तक जाते ही है चषक छलक जाता मेरा,
तब ही केवल पलभर में चंचल रूप झलक जाता मेरा;
है किसी हृदय को सरस बनाने हेतु मुझे कब जन्म मिला ?
बस सबकी तृषा बढ़ाने का ही श्रेय मुझे आजन्म मिला;
है मेरा भी अस्तित्व जगत में, बस इतना ही ज्ञात मुझे,
मैं प्याली की वह मदिरा हूँ जो अधर न कर पाई सिंचित।
मैं स्वयं न अपने से परिचित ॥३॥

कितने बसंत, कितने पतझड़ देखे आते जाते मैंने,
देखा कितनों को खिलते, इठलाते, फिर मुरझाते मैंने,
कितने दीपों का भाग्य लुटा झंझा के निष्ठुर झोंकों से,
कितने आलिंगन, कितने चुम्बन बिंधे काल-शर-नोकों से;
पर मैं तो अक्षय हूँ, चिर मधुऋतु-संकुल मेरा यह अन्तर,
मुझको किसका भय, मैं तो शाश्वत सत्ययुक्त सौंदर्य अमर;
है मेरा भी अस्तित्व जगत में, बस इतना ही ज्ञात मुझे,
मैं वह यौवन हूँ हो न सका जो स्पर्श मात्र से ही मूर्च्छित।
मैं स्वयं न अपने से परिचित ॥४॥

मेरी निर्जन कुटिया पर आते रूप-तृषाकुल अलि साग्रह,
पर खुल पाया अब तक न नवोदित कलिका का यह कारागृह,
हैं कपाट आवृत, मैं बन्दी, पर हृदयहीन सब जान मुझे
हैं लौट-लौट जाते निराश, कब मिल पाता सम्मान मुझे ?
पर हो जाऊँगा मैं उन्मुक्त कभी विहगों के पङ्खों-सा,
फिर मस्त पवन पर तैर जगत में बिखरा दूँगा स्वर्ण-उषा;
है मेरा भी अस्तित्व जगत में, बस इतना ही ज्ञात मुझे,
मैं सौरभ हूँ उस कलिका का जो हो न सकी अब तक विकसित।
मैं स्वयं न अपने से परिचित ॥५॥

है दर्शन, भेंट बहुत इतनी ही, कर लेना अनुमान स्थिर,
चिर मौन याचना करना जीवन का अनुपम संगीत रुचिर,
चिर तृषित हृदय का रह जाना, चिर तृप्ति यही है अधरों की,
कलिका से दूर सदा रहना, आसक्ति यही है भ्रमरों की;
सौरभ दूषित हो जाता है कलिका के बाहर आने से,
इसलिए उचित है यही, रहे बन्दी जीवन के पाने से;
है मेरा भी जीवन कुछ ऐसा, बस इतना ही ज्ञात मुझे,
मैं उस उर की अभिलाषा हूँ जो रहा सदा ही अनपेक्षित।
मैं स्वयं न अपने से परिचित ॥६॥

●

तुम कहो यदि

तुम कहो यदि,
ज़िन्दगी में
जागकर
अँगड़ाइयाँ
लेते हुए
दुख-दर्द को
अपना समझ
तुमको समर्पित
आज कर दूँ
और हो जाऊँ
अकिंचन !

तुम कहो यदि,
भूल जाऊँ—
एक मेरा भी
कहीं
साम्राज्य है
पीड़ा, विरह का—
और अपनी
हीनता की सुख
तुम्हीं से
मैं छिपालूँ !

तुम कहो यदि,
मैं तुम्हारी याद को
अपना समझने का
करूँ साहस;
नहीं तो
कौन अपना है
तुम्हीं जब
हो गये हो दूर ?

तुम कहो यदि,
मैं तुम्हीं को
भूल जाऊँ;
किन्तु इतना तो बतादो
तुम मुझे—
है क्या कभी भी
सालती तुमको नहीं
पोड़ा किसी के विरह की ?
तुम भी किसी को
भूलने का
यत्न करते
भूल जाते
क्या
स्वयं को ही नहीं ?

●

गीत

ओ पंछी, ओ पंछी ! दूर बसेरा तेरा ।
पङ्ख राह में थके आज हैं, जग में हुआ अँधेरा,
दूर बसेरा तेरा ।

याद तुझे किसकी है आई ?
मौन व्यथा क्यों मन में छाई ?
चमक रही है बिजली नभ में, पथ मेघों ने घेरा ।
दूर बसेरा तेरा ।

अश्रु भरे नयनों में अपने
खोज रहा क्यों मीठे सपने ?
प्रिय तो तुझसे दूर बसा है, कौन जगत में तेरा ?
दूर बसेरा तेरा ।

चलते चलते थक जाएगा
किन्तु न तू प्रिय को पाएगा;
देख कहीं दम टूट न जाए, होगा अभी सवेरा ।
दूर बसेरा तेरा ।

●

गीत

आज छेड़ दी सरगम किसने दुखी हृदय के तारों पर ?

सुप्त वेदना तन्मय होकर मधुर गीत गाने लगी,
पर अलसाई अभिलाषाओं को निद्रा आने लगी;
आज नशा छा गया चेतना के इन पहरेदारों पर।
आज छेड़ दी सरगम किसने दुखी हृदय के तारों पर ?

नयनों के उपवन में अश्रु, सुमन बनकर झरने लगे,
जो भिक्षुक प्राणों का, युग से शून्य कोष भरने लगे,
लेकिन छाई रही उदासी इन मासूम बहारों पर।
आज छेड़ दी सरगम किसने दुखी हृदय के तारों पर ?

आज न जाने क्यों उर के स्पंदन की गति अवरुद्ध है,
क्यों साँसों में आज परस्पर मचता भीषण युद्ध है;
किसने ताला लगा दिया पीड़ा की करुण पुकारों पर।
आज छेड़ दी सरगम किसने दुखी हृदय के तारों पर ?

●

मुक्तक

याद आती है, भुलाने का यत्न करता हूँ,
पीर जगती है, सुलाने का यत्न करता हूँ,
किन्तु क्या ज्ञात किसी को कि मुझे दुःख है क्या,
जग में मैं सुख ही लुटाने का यत्न करता हूँ।

* * * *

दुख भुलाने के लिए गा तो सभी लेते हैं,
अश्रु पीने को मुस्कुरा तो सभी लेते हैं;
है कठिन मन में बसाना न किसी रूपसि को,
मचले हुए दिल को यों बहला तो सभी लेते हैं।

* * * *

जिन्दगी घाव है तो मौत है उसका मरहम,
जागना, टूटे हुए सपनों का होता मातम;
किसकी किसकी करें परवाह दुखी दुनिया में,
सुख जिसे कहते सभी हैं, वही ढाता है सितम।

* * * *

बीती बातों को याद करने से क्या होता है,
खोये अवसर को याद करने से क्या होता है;
खोलकर आँख जरा देखो, हो रहा है क्या,
टूटे सपनों को याद करने से क्या होता है।

* * * *

अश्रुओं से भरा जीवन न कभी व्यर्थ हुआ,
कंटकों में पला यौवन न कभी व्यर्थ हुआ;
देखने वालों की नजर को भ्रम भले ही हो,
किन्तु उमड़ा हुआ सावन न कभी व्यर्थ हुआ।

* * * *

दीप अन्तर के बुझे, फिर से बालने हैं मुझे,
इनमें ही दर्दभरे भाव पालने हैं मुझे;
न छलक जाए कहीं आँसुओं का यह सागर,
इसी से गीत के मोती निकालने हैं मुझे।

●

शिमला

ये विस्मृति के क्षण, यह भूला-भूला, भटका-सा मन
खोज रहा किस खोई निधि को भर नयनों में सावन?
किस गहराई में डूबे वह सपने सुखद सलोने?
कहाँ कल्पना-सी उदात्तता, कहाँ बने हम बौने।

बिछुड़े आकर्षण निज कर फैलाकर हमें बुलाते,
देश-काल के बंधन थपकी दे दे इधर सुलाते;
काश, मनुज अपनी सीमा का अतिक्रमण कर पाता,
और कल्पना के जग को—सपनों को—सत्य बनाता।

किन्तु बँधे हम सीमाओं में, लाँघ न पाते उनको,
मन स्वच्छन्द उड़ा करता पर मुक्ति न मिलती तन को;
मन से चाहे जहाँ चले जा सकते हैं प्रतिपल हम,
पर यदि तन उड़ना चाहे तो वहीं टूट जाता दम।

यह परवशता खलने लगती कभी कभी प्राणों को,
ढोना पड़ता भार साँस का इन्हीं उपादानों को;
बढ़ जाता है दुःख प्रकृति के अंचल में जब जाकर
हमें लौटना पड़ता जग की चिंता से घबराकर।

तब सुधियों के पङ्ख हमें भूले जग में पहुँचाते,
और कल्पना के दृग दूर छिपा वैभव दिखलाते;
तब भावों की सरस तूलिका रंग विविध विधि भरकर
मन को चित्राधार बना बहु चित्र बनाती सुन्दर।

एक अविस्मरणीय चित्र है सर्वप्रथम खिंच जाता,
शिमला का निर्मल वैभव चिर नवल रूप धर आता;
पर यह चित्र न जड़ है, इसमें गति है—चंचलता है,
इसकी स्मिति में मन को हरने वाली वत्सलता है।

यह चलचित्र, बदलते जिसमें चंचल दृश्य अनेकों,
घूमा करता अन्तर्नयनों में पीड़ा हरने को;
स्वप्नजाल सा बुना कल्पना का, यह चित्र मनोहर
सार्थक लगता नयनों का अस्तित्व जिसे यों लखकर।

धरती के वक्षस्थल पर उभरे भूधर-सुपयोधर
आँख-मिचौनी करते कुहरे के झीने अंचल पर,
छिप जाते हैं कभी जब कि हिम-वाष्प इन्हें ढक लेता,
स्वर्ण-करों से इन्हें अनावृत दिनकर झट कर देता।

हरित कंचुकी कसी उरोजों पर जो पल-पलभर में
उठती, गिरती है जब भी होता है स्पंदन उर में;
है झकझोर दिया करता जब चंचल पवन इन्हें नित,
होते रहते उद्वेलित ये क्रम से सदा सितासित।

उच्चाकांक्षाओं सम उन्नत-मस्तक वृक्ष मनोहर
—देवदारु-से यती तपस्यालीन सुखद, पीड़ाहर—
अडिग, अचल हैं खड़े हुए झंझावातों में डटकर,
कभी बुलाते नभ के तारों को निज शीश हिलाकर।

प्रथम प्रेम की गहराई-सी अमराइयाँ सुविस्तृत
होती जिनमें कहीं कहीं अविरल पयस्विनी निःसृत;
कहीं कहीं बलखाती पगडण्डी हँसकर, इठलाकर
चली जा रही मंज़िल से करने अभिसार लजाकर।

उपत्यकाएँ फैली हैं अति दूर क्षितिज-अंचल तक,
पर्वत-पथ पर चलते हम हैं उन्हें ताकते अपलक;
श्री-युत इन्हें कभी कर देते रवि-कर-निकर चमककर,
कभी मेघ श्यामल छाया से इन्हें बनाते मनहर।

भीमकाय गिरि, उच्च शिखर, निश्चल कठोर चट्टानें
जग से कहते सदा कि इनको कोमलता पहचाने;
समझा करते इन्हें सदा हम वज्र हृदय वाले तन,
पर न जानते हम, इनमें भी होता सरस, सजल मन।

किसी वियोगिनि के रुक रुक कर पल-प्रतिपल जो बहते
वर्षा बनकर अश्रु, इन्हीं से करुण कथा निज कहते;
वज्र-हृदय पाषाण मोम सम विगलित होते उस क्षण,
अश्रु-स्रोत बहते जो सिंचित करते भू का कण-कण।

हरिताभा बिखराती अनुपम शैल-श्रेणियाँ दुर्गम,
मेघ पवन के सप्त स्वरों को जिन्हें सुनाते सरगम;
रेलमार्ग को कभी न मिलने वाली दो रेखाएँ,
आत्मसात करती-सी जिनको अगणित शून्य गुफाएँ।

रवि-शशि-सज्जित, उडुगन-विखचित शून्य, अचल नीलाम्बर
जिसे देख जग की नश्वरता लगती मिथ्याडम्बर;
प्रलय भयावह यहाँ न लगती, होता काल तिरोहित,
तेज-पुंज है एक कि जिससे होता सब जग ज्योतित।

रंगमंच पर पटाक्षेप होता ज्यों, दृश्य बदलता,
त्योंही श्रांत प्रकृति श्रोझल होती, छाती चंचलता;
मानवीय संघर्ष, जगत का कोलाहलमय स्पंदन,
कहीं मुक्त उल्लास-हास है, कहीं प्रवंचित क्रन्दन।

यह शिमला का चित्र नहीं जो दिया प्रकृति ने इसको,
यह है मूर्ति गढ़ा मानव के सुदृढ़ करों ने जिसको;
यह मानव के अकथनीय श्रम, साहस की प्रतिमा है,
इसमें जग-जीवन के प्रति अनुरक्ति-भरी गरिमा है।

मानवीय श्रम के प्रतीक ये भव्य भवन गगनोन्मुख
गुंथे हुए गिरिमाला में मोती सम, नित देते सुख;
अन्तर्दृष्टि-युक्त हैं मानों द्वार, गवाक्ष मनोहर,
दिखा रही है प्रकृति विराट स्वरूप जिन्हें अविनश्वर।

यह है स्केटिंग-हाल जहाँ जीवन-गति उत्तेजित है,
श्रांत पगों को अस्फुट ध्वनि से प्रति उर उद्वेलित है,
यहाँ फिसलते पग पर लेतीं अँगड़ाई बालाएँ,
होता है आभास कि जैसे तिरती हों नौकाएँ।

बॉलरूम है यह जिसमें थिरका करते पागल बन
थके चरण, मदभरे नयन, चंचल चितवन, विस्मृत मन;
यहाँ परस्पर भुजाबद्ध युग्मों का स्वर्ग बिखरता,
मदिरा की मादकता में यौवन का रंग निखरता।

यह सतरंगा मालरोड हर शाम जहाँ मुस्काती,
जहाँ अतुल सौंदर्य, सौख्य की सरिता बहती जाती;
एक ओर सौंदर्य प्रकृति का स्वर्गिक शोभा पाता,
मानवीय सौंदर्य यहाँ उससे है होड़ लगाता।

उधर गगन तक उभरे अविचल पर्वत मन हर्षाते,
इधर सुगढ़, चंचल उरोज कुछ अपनी-सी कह जाते;
उधर विहँसती ऊषा, नभ-मुख अरुणिम हो-हो जाता,
इधर विहँसता यौवन नित, अनुराग वदन पर छाता।

जुटा लिये हैं हास, विलास सभी मानव ने जग के,
किन्तु निकाल न पाया अब तक चुभते काँटे पग के;
दो दो मन का भार लिये हैं श्रमिक चढ़ाई चढ़ते,
अंचल ज्यों मानवता का हों ये ही रहे पकड़ते।

इनका जीवन है सुखहीन, इन्हें कब वैभव मिलता ?
यद्यपि मानव का वैभव इनके ही हाथों पलता;
इन्हें कहाँ अधिकार कि सूखी रोटी भी पा जाएँ,
कैसे ये जग के सुख में पलभर को भी खो पाएँ ?

यह अभाव, दुख-दैन्य, विषमता और पराश्रित तन-मन,
यह अमन्द आनन्द विभव-सुख, यह विलासमय जीवन—
धूपछाँह से इनको ऊब रहे हैं प्राण निरंतर,
भरा हुआ है अकथनीय सूनेपन से यह अंतर ।

स्वप्न टूटता, शिमला होता दूर सजग नयनों से,
ओझल होता लोक कल्पना का आकुल प्राणों से;
कवि आता है लौट यथार्थ जगत में लेकर संभ्रम,
इस अभावमय जीवन का फिर से चल पड़ता नितक्रम ।

●

क्या हुआ यदि.....

क्या हुआ यदि
मैं तड़पता हूँ अभी ?
उछलने से पूर्व
यों ही
हर लहर में ज्वार आता
और वह
यों ही तड़प कर
बाजुओं को तौलती है ।

क्या हुआ यदि
जल रहा हूँ मैं अभी ?
सूर्य के दौर्बल्य का
उपहास करने के लिए
रात भर
तम भस्म करता
हर दिया
यों ही जला करता
त्रिलोचन के
तृतीय नयन-सदृश !

क्या हुआ यदि
मिट रहा हूँ मैं अभी ?
हर नये निर्माण से पहले,
वास्तविकता के नये
आह्वान से पहले
ध्वस्त होते जीर्ण कण
कितने न जाने
और यों ही
लोचनों में पल रहे
सुख-स्वप्न भी
मिटते चले जाते ।

क्या हुआ यदि
खिल न पाता मैं अभी ?
हर सुमन करता प्रतीक्षा
सूर्य की पहली किरन की,
प्रात की मादक पवन की,
और खिल जाता स्वयं
अनुकूल वातावरण जब
मिलता उसे ।

खिल रहा हूँ यदि नहीं मैं,
उठ रहा हूँ यदि नहीं मैं,
बढ़ रहा हूँ यदि नहीं मैं—
अर्थ इसका है कदापि न यह
कि मैं गतिहीन,
आशाहीन या बलहीन हूँ;
यह क्षणिक अवरोध है,
देखता मैं बाट उस क्षण की
मुझे अनुकूल वातावरण
जब मिल जाएगा
और मैं
पुष्पित, प्रफुल्लित और
सुरभित बन
जगत में
गंध भर दूंगा।

●

गीत

कुछ कमी थी कहीं इस भरे विश्व में, चाँद ढलता रहा, रात रोती रही ।

स्वप्न की गोद में कामना पल रही,
दीप की गोद में वर्त्तिका जल रही;
साधना थी सिसकती पड़ी अंक में,
स्नेह चुकता रहा, ज्योति खोती रही ।
कुछ कमी थी कहीं इस भरे विश्व में, चाँद ढलता रहा, रात रोती रही ।

आगया गुनगुनाता हुआ जो भ्रमर,
छटपटाता रहा बन्द हो रात भर;
रूप-तृष्णा बनी काल का पाश दृढ़,
वासना अश्रु के बीज बोती रही ।
कुछ कमी थी कहीं इस भरे विश्व में, चाँद ढलता रहा, रात रोती रही ।

पा किसी का इशारा चला जा रहा
सोचता मैं, कि तट पास है आ रहा;
पास आकर सदा दूर होता रहा,
इस तरह उम्र थी शेष होती रही ।
कुछ कमी थी कहीं इस भरे विश्व में, चाँद ढलता रहा, रात रोती रही ।

●

गीत

बुझ चुका तन,
जल रहा मन,
प्राण पलते रह सकेंगे या नहीं,
यह जान पाया हूँ नहीं मैं ।

घिर रहा तम सघन,
बढ़ रही है थकन,
राह जग के सफ़र की कठिन लग रही;
थम न पाता रुदन,
बह रहे अश्रुकन,
आज कोई पुरानी व्यथा जग रही;

ऊबता तन,
डूबता मन,
दृग पिघलते रह सकेंगे या नहीं,
यह जान पाया हूँ नहीं मैं ॥१॥

दुःख कितने सहे,
शेष कितने रहे,
की न गणना हृदय ने कभी यह सरल;
स्वर अधर तक बहे,
रह गये अनकहे,
बन सके न अमिय जो, बने वे गरल;

सूखता तन,
टूटता मन,
भाव गलते रह सकेंगे या नहीं,
यह जान पाया हूँ नहीं मैं ॥२॥

जिन्दगी - मृगतृषा
बन गई थी नशा,
प्यार पाला लगन ने स्वयं लुब्ध हो,
किन्तु छाई निशा,
मिल न पाई दिशा,
दर्द ढाला जलन ने स्वयं क्षुब्ध हो;

सो चुका तन,
जग रहा मन,
स्वप्न ढलते रह सकेंगे या नहीं,
यह जान पाया हूँ नहीं मैं ॥३॥

प्रश्न अगणित मुखर
हो रहे थे मगर
एक का भी न उत्तर कभी मिल सका;
साँस थी कब अमर ?
कट सका कब सफ़र ?
किन्तु विश्वास अब तक नहीं हिल सका;

रुक चुका तन,
चल रहा मन,
लक्ष्य छलते रह सकेंगे या नहीं,
यह जान पाया हूँ नहीं मैं ॥४॥

●

गीत

यों तो तुमने कभी बताया नहीं मुझे, पर मैं जान गया, मुझ से है प्यार तुम्हें।

आँखों ने आँखों से सब कुछ कह डाला,
रेशम से बँध गया भाग्य अब शूलों का;
मन ने हँसती पीड़ा का पंछी पाला,
काँटों से बिंध गया हृदय अब फूलों का;
यों तो परिचित रहे सदा तुम फूलों से, करने होंगे अब काँटे स्वीकार तुम्हें।

मुखर किया कब तुमने अपने भावों को?
पर उच्छ्वासों ने थी कथा सुना डाली;
दिखलाया कब तुमने मन के घावों को,
केवल ढाली मादक नयनों की प्याली;
यों तो मौन रहो चाहें तुम जीवन भर, किन्तु कभी करनी होगी मनुहार तुम्हें।

शायद मेरा प्यार बुला लाया तुमको,
मेरे ही कारण तुमने यह जन्म लिया;
नन्दन-वन का अमृत कब भाया तुमको,
तुमने मेरे लिए धरा का गरल पिया;
यों तो मुक्त रहे तुम सारी दुनिया से, किन्तु बाँध लाया मेरा संसार तुम्हें।

तन से तन की दूरी केवल साँसों की,
मिलने में बाधक है बन्धन जीवन का;
तुमसे चर्चा कैसी तन की प्यासों की ?
करना है संतोष हमें केवल मन का;
ं तो आ न सकोगे मेरे पास कभी, पर करना होगा मन का व्यापार तुम्हें ।

पास न हो तुम किन्तु दूर कैसे समझूँ ?
जब कि हृदय की हर धड़कन में लय हो तुम;
जग नश्वर, तुम को नश्वर कैसे कह दूँ ?
जब मेरी स्मृति के जग में अक्षय हो तुम;
ं तो पृथक मिले हैं प्राण-शरीर हमें, पर इनको करना है एकाकार तुम्हें ।
ं तो तुमने कभी बताया नहीं मुझे, पर मैं जान गया, मुझसे है प्यार तुम्हें ।

●

गीत

कुछ जीने को, कुछ मरने को साँसों का आवास है,
किन्तु क्या करूँ ?
प्राण डूबते,
वैरिन पागल साँस है ।

ज्वार उठ रहा,
पीर जग रही,
स्नेह चुक रहा,
शान्ति मिट रही;

कुछ जलने को, कुछ बुझने को अब भी मुझमें आस है,
किन्तु क्या करूँ ?
जलना, बुझना
जीवन का परिहास है ।

बात बड़ी है,
समय बहुत कम,
घड़ी घड़ी है
मानो बेदम;

कुछ पाने का, कुछ खोने का इस मन में विश्वास है,
किन्तु क्या करूँ ?
समय को कहाँ
रुकने का अभ्यास है !

सुन न सकूँ जो,
कहते रहना,
कह न सकूँ जो
स्वयं समझना;

कुछ सुनने को, कुछ कहने को अब भी मेरे पास है,
किन्तु क्या करूँ ?
मौन हुआ हूँ,
बेबस हृदय उदास है।

●

गीत

गीत मेरे हो चुके हैं शेष, अब तुम गीत गाओ !

वेदना के अश्रुओं से हो गये ये गान गीले,
तोड़ डाले विरह ने संगीतमय सपने सजीले;
कल्पना के इन प्रसूनों को तुम्हीं फिर से सजाओ ।
गीत मेरे हो चुके हैं शेष, अब तुम गीत गाओ ।१।

आज मेरे हृदय का कवि और गायक सो चुका है,
उठ चुकी महफिल सुखों की अब अँधेरा हो चुका है;
बुझ चुके हैं दीप जो, निज स्नेह से उनको जलाओ ।
गीत मेरे हो चुके हैं शेष, अब तुम गीत गाओ ।२।

कंठ-स्वर अवरुद्ध है, मैं आज कैसे गीत गाऊँ ?
हैं हृदय के भाव भाषाहीन, दुख कैसे सुनाऊँ ?
वेदना की स्वर-लहरि में डूबता, मुझको बचाओ ।
गीत मेरे हो चुके हैं शेष, अब तुम गीत गाओ ।३।

धड़कनों की ताल से मन की, अलग मैं हो चुका हूँ,
साँस का स्वर, कंठ का संगीत कब का खो चुका हूँ;
प्राण का यह राग तुम अपने स्वरों में गुनगुनाओ।
गीत मेरे हो चुके हैं शेष, अब तुम गीत गाओ।४।

गीत गाये थे कि तुम मेरे दुखों को जान लोगे
और मेरे अश्रुओं की पीर को पहचान लोगे;
रो चुका हूँ मैं बहुत, अब और मत मुझको रुलाओ।
गीत मेरे हो चुके हैं शेष, अब तुम गीत गाओ।५।

●